वांचकोने सादर विज्ञप्ति



श्रीद्वादशांगीना प्रणेता श्रीगणधरभगवंत रचित श्रीआवश्यकसूत्रनी निर्युक्ति युगप्रधान श्रीमद् भद्रबाहुस्वामी महाराजे अने चूर्णि श्रीमद् जिनदासगणिमहत्तरे करेली छे. ते निर्युक्ति उपर विस्तृत टीका चौदशे चुम्मालीस ग्रन्थना प्रणेता आचार्य श्रीमद् हरिभद्रसूरिजी महाराजे करेल छे. आ चूर्णि तथा टीकाना आधारे निर्युक्ति उपर श्रीअञ्चलगच्छना आचार्य श्रीमेरुतुङ्गसूरिजीना शिष्य आचार्य श्रीमाणिक्यशेखरसूरिजी महाराजे दीपिका रचेल छे. निर्युक्ति, चूर्णि तथा टीकामां कोई पण स्थळे पोताना गच्छनी मान्यतानो नामनिर्देश पण नहि होवा छतां सदरहु दीपिकामां पोताना गच्छनी मान्यताओनी जेवी के मुहपत्तिने बदले वस्त्रनो छेडो, पर्वदिवसे ज पौषध, पौषधमां आहारनो निषेध वगेरेनी पुष्टि करवाने कल्पित चर्चाओ उपस्थित करीने तेने सिद्ध करवा प्रयत्नो करेला छे. हरकोई ग्रन्थकारने पोताना स्वतंत्र रचेल ग्रन्थमां पोतानी अगर पोताना गच्छनी जे जे मान्यताओ होय तेने शास्त्रीय प्रमाणोथी सिद्ध करवाने माटे स्वतंत्र चर्चाओ उभी करी तेने सिद्ध करवानी छूट होय छे, परंतु मौलिक ग्रन्थो उपर टीका, चूर्णि वगेरेना आधारे ज्यारे लखवानुं होय त्यारे तेमां आवी विकृति करवी ते कोई पण रीतिए हितावह नथी. आ ग्रन्थ छपावती वखते तेमनी मान्यताओनुं खंडन टीप्पणीओ करवाथी थई शके तेम होवा छतां पण तेज ग्रन्थमां तेज ग्रन्थकारनी मान्यतानुं खंडन करवुं उचित नहि लागवाथी सदरहु ग्रन्थमां तेवुं कंई पण करवामां आवेल नथी, परंतु जेवो ग्रन्थ छे तेवोज छपाववामां आवेल

छे. माटे मुख्य वांचकोए एटलो ख्याल राखवो के ज्यां ज्यां सामायिक, पौषध, मुहपत्ति आदि स्थळोमां तपागच्छनी मान्यता विरुद्ध देखाय ते अञ्चलगच्छनी मान्यता मुजब जणावेल छे अने समज न पडे त्यांना स्थळो माटे टीका, चूर्णि तथा प्रवचनपरीक्षादि ग्रन्थो जोई लेवा.

जैन उपाश्रय, लींच
वि. सं २००५, भाद्रो सुद ५.

लि० संशोधक
मानविजय.



प्रकाशकीय निवेदन.



ते श्रीआवश्यकनिर्युक्ति दीपिका ग्रन्थनो १ लो तथा २ जो भाग सदरहु ग्रन्थमालाना ग्रन्थांक नं. १६ तथा नं. २९ तरीके बहार पाडवामां आवेला छे तेना त्रीजा भागनुं मुद्रण केटलाक अनिवार्य संजोगोने लीधे बंध राखवामां आव्युं हतुं, परंतु अधूरुं रहेल कार्य कोई रीते पूर्ण करवुं जोईए ते हेतुथी तथा त्रीजो भाग क्यारे बहार पडशे एम बन्ने भागना ग्राहको तरफथी वारंवार

पृच्छा थवाथी पूज्यमहाराजश्रीने अमोए गई सालमां दीपिकानुं वाकीनुं काम पूरुं करी आपवा विनंति करी अने अमारी ते विनंतिने स्वीकारीने पूज्य महाराजश्रीए चालु सालमां ते कार्यनी शरुआत करी पूर्ण करी आपवाथी अमो आ श्रीआवश्यकनिर्युक्ति दीपिकानो त्रीजो भाग सदरहु ग्रन्थमालाना ग्रन्थांक नं. ४२ तरीके वांचकजनोना करकमलमां रजु करवा भाग्यशाली थया छीए.

आ त्रीजा भागने छपाववामां पूज्य पंन्यासजी महाराज श्रीतिलकविजयजी गणिवरना उपदेशथी वीरमगामना रहेवासी सुश्रावक हठीसंग तेजपाल द्वारा मळेल रु. ३५१ त्रणसो एकावन तथा पहेला तथा बीजा भागना वेचाणनी आवेल रकमनो उपयोग करवामां आवेल छे. तथा पू. पंन्यासजी महाराज श्रीमानविजयजी गणिवर तथा पू. पंन्यासजी महाराज श्रीकान्तिविजयजी गणिवरे प्रूफो वगेरे तपासी आपवामां पोताना अमूल्य समयनो भोग आप्यो छे. तथा जे साधर्मी बंधुए पूर्व पुण्यना योगे मळेला द्रव्यनो श्रुतज्ञाननी भक्ति करवा द्वारा आ ग्रन्थने छपाववामां सहाय करेली छे ते बधाओनो आ संस्था तरफथी अत्यंत आभार मानवामां आवे छे. अने आवी रीते तेओना तरफथी संस्थाने लाभ मळतो रहे एवी आशा राखवामां आवे छे.

सदरहु ग्रन्थना कर्त्ता माटे प्रस्तावनामां यथायोग्य दर्शाववामां आवेल छे एटले अत्रे लखवामां आवेल नथी.

गोपीपुरा—सुरत
वि. स २००५ भादरवा सुद १५

लि० श्रीविजयदानसूरीश्वरजी जैनग्रन्थमाला
व्यवस्थापक—मास्तर हीरालाल रणछोडभाई

प्रस्तावना

वि. सं. १९९४ मां चारित्रचूडामणि सिद्धान्तमहोदधि आचार्य श्रीमद् विजयप्रेमसूरीश्वरजी महाराजा पोताना बहोळा शिष्य–प्रशिष्य समुदाय साथे मुंबई लालबाग जैन उपाश्रयमां चातुर्मास बिराजमान हता. ते वखते पोतानी देखरेख नीचे छेदसूत्र श्रीनिशीथचूर्णिना संशोधननुं कार्य पोताना साधुओ द्वारा चालतुं हतुं. ते दरमियान कारणवशात् पायधुनी उपर आवेल श्री-शान्तिनाथजी महाराजना देरासरना मकानमां आवेल श्रीसागरगच्छ प्रवचन पूजक सभाना हस्तलिखित भंडारनुं लीस्ट जोता तेमां श्रीआवश्यक निर्युक्ति दीपिकानुं नाम वांचता ते प्रति जोवा माटे मंगावी. ते जोतां एम लाग्युं के साधु अने साध्वीओने उभय टंक प्रतिक्रमणमां बोलवाना आवश्यक सूत्रोना अर्थज्ञान माटे पू. श्रीहरिभद्रसूरिमहाराजनी तेमज पू. श्रीमलयगिरि-महाराजनी विस्तृत अने कठिन टीकाओ वंचावता पूर्वे आ दीपिका जेवो सामान्य ग्रन्थ वंचाववामां आवे तो प्रथम सामान्य बोध जल्दीथी थाय अने पछी विस्तृत टीकाओ पण महेलाईथी वंचावी शकाय अने समजावी शकाय. वळी आ ग्रन्थ अद्यावधि अमुद्रित छे. आ हेतुथी आ दीपिका ग्रन्थ छपाववानी एओश्रीनी इच्छा थई अने ते कार्य मारा वडील गुरुबन्धु पू. मुनि श्रीतिलकविजयजी महाराज (हाल पं. श्रीतिलकविजयजी गणिवर) तथा मने सोंपवामां आव्युं. त्यार पछी आ ग्रन्थनी बीजी प्रतिओ मेळववा माटे कोशिश करतां फक्त एकज प्रति पूनाना श्रीभांडारकर इन्स्टीट्युटमांथी मळी आवी. आ प्रमाणे मळेली कुल बे प्रतिओ उपरथी प्रेस कोपी तैयार कराववामां आवी अने ते प्रेस कोपी बन्ने प्रतिओ साथे मेळवीने शुद्ध करवा माटे बनतो प्रयास करवामां आव्यो.

आ रीते प्रेस कोपी तैयार थया पछी छपाववा माटे द्रव्यनी जे सहाय जोईए ते पूज्य श्रीतिलकविजयजी महाराजे अवरनवर उपदेशद्वारा भाविक श्रावको पासेथी अपाववानुं स्वीकार्युं अने आ ग्रन्थ छपाववा माटे प्रेस साथे गोठवण करवी प्रूफो शोधवा वगेरेनुं बाकीनुं तमाम कार्य में स्वीकार्युं. आम आ ग्रन्थ छपाववा माटे परमोपकारी पूज्यपाद आचार्यदेवनी प्रेरणाथी अने अमारा बन्नेना सहयोगथी आ श्रीआवश्यकनिर्युक्ति दीपिका नामनो ग्रन्थ त्रण विभागमां संपूर्ण बहार पाडी शकायो छे.

स्वर्गीय पू. आचार्यदेव सकलागमरहस्यवेदी श्रीमद् विजयदानसूरीश्वरजीमहाराजश्रीना पोताना उपरना अनहद उपकारथी प्रेराइने मास्तर हीरालाल रणछोडभाईए एओश्रीना पुनित नामथी अंकित ग्रन्थमाला वि. सं. १९९४ मां शरु करी हती. अने केटलाक ग्रन्थो ते संस्था तरफथी बहार पण पडी चूक्या हता. बीजा पण अपूर्व ग्रन्थो आ संस्था द्वारा बहार पडे तो सारुं एम मास्तर हीरालालनी इच्छा होवाथी तेमणे अमोने ते कार्य माटे विनंति करवाथी आ ग्रन्थ पण सदरहु ग्रन्थमाला के जेनी साथे अमारा परमपूज्य परमगुरुदेव स्वर्गीय आचार्यदेवनुं नाम जोडवामां आवेल छे ते ग्रन्थमालाना १६—२९ अने ४२ मा ग्रन्थांक तरीके सदरहु ग्रंथना त्रण विभागो बहार पाडवामां आवेल छे.

सदरहु ग्रन्थना कर्ता ग्रन्थनी प्रशस्तिमां जणाव्या मुजब अंचलगच्छमां थयेल श्रीमहेन्द्रप्रभसूरिजीना पट्टधर श्रीमेरुतुंगसूरिजीना पट्टधर श्रीमाणिक्यशेखरसूरि छे. तेमनुं आखुं जीवन तपास करवा छतां पण उपलब्ध थई शक्युं नथी. तेमज तेओ क्यारे थया ? क्यां जन्म्या ? क्यारे दीक्षा लीधी ? ए बधी विशिष्ट हकीकतो पण मळी शकी नथी छतां, पण जे कंई तेमना संबंधमां प्राप्त थयुं छे ते नीचे मुजब आपवामां आवे छे—

१ तेओश्रीनो सत्ताकाळ पंदरमी सदी होवानो संभव छे. श्रीजैन सत्य प्रकाश मासिकोमां पू. मु. श्रीन्यायविजयजी महाराज तरफथी चालु सालमां श्रीजीरावला तीर्थना शिलालेखो संबंधी लखाणो आवे छे. तेमां ता. १५–८–४९ ना अंक ११ मां देरी नंबर ३१ नो जे शिलालेख आपवामां आवेलो छे, तेमां लखेल छे के 'संवत १४८३ वर्षे प्रथम वैशाख शुद १३ गुरौ श्रीअंचलगच्छे श्रीमेरुतुंगसूरीणां पट्टोधरेण श्रीजयकीर्त्तिसूरीश्वर सुगुरूपदेशेन...श्रीजिराउला पार्श्वनाथस्य चैत्ये देहरि (१) कारापिता........'. आ श्रीजयकीर्त्तिसूरिजी महाराज अंचलगच्छेश श्रीमेरुतुंगसूरिजीना शिष्य छे अने सदरहु ग्रन्थना कर्ता श्रीमाणिक्यशेखरसूरि पण तेमना शिष्य छे. एटले बन्ने गुरुभाई होवानो संभव छे अने श्रीजयकीर्त्तिसूरिजीए सं. १४८३ मां देरीनी प्रतिष्ठा करावेल छे. ते उपरथी उपरनुं अमारुं अनुमान सिद्ध थाय छे के आ ग्रन्थना कर्ता श्रीमाणिक्यशेखरसूरिजी पण तेज सदीमां थया होवा जोईए. तदुपरांत आ अनुमानना अनुसंधानमां मने त्रीजा भागना संशोधन वखते पूज्य विद्वद्वर्य साहित्यप्रेमी मुनिराज श्रीपुण्यविजयजी महाराज तरफथी जे बे प्रतिओ मळेली छे तेमां एक वि. सं. १५५० तथा बीजी वि. सं. १५६५ मां लखायेली छे अने प्रथम मुंबई तथा पूनानी जे प्रतिओ मळेली तेमां तो लख्या संवत छे ज नहि. एटले तेमना सत्ता काळना अनुमाननी पहेलानी लखायेली कोई प्रति मळती ज नथी अने सत्ताकाळना अनुमान पछीना ज पहेला लेखनी उपरोक्त प्रतिओ मळेली छे. ए उपरथी पण अमारुं अनुमान साचुं होवानो सभव छे.

२ ग्रन्थना अन्ते आपवामां आवेली ग्रन्थकारनी प्रशस्तिमां ग्रन्थकारे (१) श्रीआवश्यकनिर्युक्ति दीपिका (२) श्रीदशवैकालिकनिर्युक्ति दीपिका (३) श्रीपिण्डनिर्युक्ति दीपिका (४) श्रीओघनिर्युक्ति दीपिका (५) श्रीउत्तराध्ययन दीपिका अने (६) श्रीआचार

दीपिका नवतत्त्व विचारणा एम छ ग्रन्थो रचेल होवानुं जणावेल छे. ज्यारे श्रीजैनश्वेताम्बर कोन्फरन्स तरफथी छपायेल श्रीजैनग्रन्थावलीमां (१) श्रीआवश्यकनिर्युक्ति दीपिका (२) श्रीपिण्डनिर्युक्ति दीपिका (३) श्रीदशवैकालिक निर्युक्ति दीपिका अने (४) श्रीओघनिर्युक्ति दीपिका एम चार ज ग्रन्थो सदरहु ग्रन्थकारे रचेला होवानुं जणाववामां आवेल छे. बाकीना बे उपलब्ध थता नथी. संभव छे के अद्यावधि अप्रसिद्धावस्थामां रहेल भंडारोमां ते बे ग्रन्थो होय अगर विच्छेद पण पाम्या होय.

आ रीतिए ग्रन्थकारना संबन्धमां जेटलुं साहित्य मळी शक्युं तेटलुं उपर मुजब जणाववमा आव्युं छे.

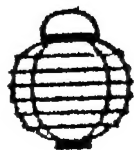
उपर जणाव्या मुजब सदरहु ग्रन्थना संशोधन कार्यमां प्रथम बे ज प्रतिओ प्राप्त थयेली अने ते उपरथी ज प्रेस कोपी तैयार करवामां आवेली. बन्ने प्रतिओ जोईये तेवी शुद्ध न हती, बन्ने प्रतिओमां पण परस्पर पाठफेर आवता हता छतां पण बन्नेनो समन्वय करीने शक्यता प्रमाणे प्रेस कोपी शुद्ध करीने ग्रन्थ छपाववामां आव्यो छे. तोपण केटलेक ठेकाणे अर्थदृष्टिए त्रुटिओ रहेली छे, परंतु निरुपाये ते एमने एम ज राखीने बे भागो बहार पाडवामां आव्या. त्यार पछी त्रीजा भागनुं कार्य अनिवार्य संजोगोमां बाकी रही गयुं. तेटलामां लडाइ शरु थई, पेपर उपर कन्ट्रोल आव्यो, कागळ मळवानी मुश्कीलता थई, मोंघवारी पण वधी अने छपामणना चार्ज पण घणा ज वधता गया, आवा कारणोना योगे समय पलटाय अने सोंघवारी थाय एटले बाकीनुं काम पुरुं करीए ए आशाए छ सात वर्ष नीकळी गया. छेवटे गइ साल मास्तर हीरालालनो आ काम पूर्ण करी आपवा माटे आग्रह थवाथी आ कार्य पूर्ण करवा चालु सालमां शरु कर्युं. ते वखते मारा लघुगुरुबन्धु पंन्यास श्रीकान्तिविजयजी गणिवर मारफत साहित्यप्रेमी विद्वद्वर्य पूज्य श्रीपुण्यविजयजी महाराज पासेथी पूज्य श्रीहंसविजयजी महाराजना शास्त्रसंग्रहमांथी बे प्रतिओ एक वि.सं.१५५०मां लखाएली

गया बीजो वि. सं. १९६४मां छपाएली मळी आवी. तेनी साथे त्रीजा भागनी प्रेस कोपी मेळवीने बनती विशेष शुद्धि करीने आ त्रीजो भाग छपाववामां आव्यो छे. बे प्रतिओ पण अतिशुद्ध न हती छतां पण तेमांथी केटलुंक अगत्यनुं सुधारवा लायक मळी गयुं. आ रीते त्रणे भागो शुद्ध छपाववा माटे बनता प्रयासो करवामां आव्या छे. छतां प्रतिओनी अशुद्धताने योगे, अर्थदृष्टिए पाठनी त्रुटिना योगे तथा छद्मस्थताना योगे मारी समजफेरना कारणे जे भूल रही जवा पामी होय अथवा प्रेसदोषथी तथा प्रूफ सुधारवामां पण अनुपयोगथी जे कंई भूल रही जवा पामी होय तेने विद्वान् वांचको सुधारी लेशे एवी आशा छे.

मजकुर ग्रन्थनी प्रतिओ पूरी पाडनार संस्थाओने तथा साहित्यप्रेमी पूज्य मुनिराज श्रीपुण्यविजयजी महाराजने तथा त्रीजा भागना प्रूफो तपासवामां मने अपूर्व सहाय आपनार मारा लघुगुरुबन्धु पं. श्रीकान्तिविजयजी गणिवरने याद कर्या वगर रही शकाय तेम नथी. एज शुभेच्छा.

लि० संशोधक
मानविजय

जैन उपाश्रय, लींच.
वि. सं. २००५ आसो सुद २



शुद्धिपत्रकम्

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धः	शुद्धः	पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धः	शुद्धः
१/१	२	माणेक्य	माणिक्य	२/२	३	रूपत्वात्	रूपत्वात्
,,	१२	१५५१	२४१	,,	५	१५५५	२४५
१/२	२	१५५१	२४१	,,	१०	१५५६	१
,,	४	१५५२	२४२	,,	१२	१५५७	२४६
,,	६	१५५३	२४३	३/१	१	१५५७	२४६
२/१	१	१५५२	२४२	,,	४	१५५८	१५५१
,,	६	१५५४	२४४	,,	६	१५५८	१५५१
,,	१०	१५५४	२४४	,,	८	१५५९	१५५२
,,	१२	१५५५	२४५	,,	१०	१५५९	१५५२
२/२	२	॥ १५५६ ॥	॥ १ ॥ (प्र०)	,,	१२	१५६०	१५५३

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धः	शुद्धः
३/२	२	१५६१	१५५४
"	१२	१५६०–६१	१५५३–५४
"	२	१५६२	१५५५
४/१	३	भङ्गै	भङ्गै
"	५	१५६२	१५५५
"	८	१५६३	१५५६
"	११	१५६३	१५५६
"	१३	१५६४	१
"	१	१५६४	१
४/२	३	१५६५	२
"	५	१५६६	३
"	७	१५६७	४
"	९	१	५
६/१			

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धः	शुद्धः
६/१	११	२	६
"	१३	३	७
६/२	२	४	८
७/१	११	भङ्गाः	भङ्गाः
८/२	९	किं	कि
११/२	१	तवेद	तवेदं
१२/२	५	संकलपज	संकलपजः
"	८	छवि	छवि
१३/१	४	नमुत्थुणं	नमुत्थु णं
१९/१	११	जनास्था वृद्धि०	जनास्थावृद्धि०
२१/१	१२	करिंतो	करिंतो
२१/२	१३	इरिया०	ईरिया०
२२/१	७	पोरिर्सि	पोरिसिं

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धः	शुद्धः	पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धः	शुद्धः
२४/१	६	निवृत्तं	निर्वृत्तं	३७/१	८	४ च	च
२५/१	११	कहिं	कर्हिं	४०/१	८	निस्पृह०	निःस्पृह०
"	"	साहूमूले	साहू(हु)मूले	"	"	चेद्गृही	चेद् गृही
२६/१	२	सघरंगणओ	सघरंगणओ	४१/१	३	गुणे रसे	रसे गुणे
२७/१	२	साहूणो	साहू(हु)णो	"	"	किं	किं
२७/१	८	अन्योन्नति वैम०	अन्योन्नतिवैम०	"	११	किं	किं
२८/१	५	महत्ववान्	महत्त्ववान्	४१/२	४	हिंसा	हिंसा
२९/२	९	०तपो निर्जरैव०	०तपोनिर्जरैव	४३/१	२	कलप्यं	कल्प्यं
३३/१	४	स्याथा	स्यात्तथा (तथा)				



श्रीविजयदानसूरीश्वरजी जैन ग्रन्थमाला–सुरत.

ग्रन्थांक	ग्रन्थनुं नाम	किंमत	ग्रन्थांक	ग्रन्थनुं नाम	किंमत
१	मौन एकादशी सं. पद्य	०–१–०	×१२	जिनगुणगान अमीधारा गुजराती	भेट
· २	श्री[illegible] कथा सं. पद्य	०–१–३	×१३	विविध प्रश्नोत्तर भा. २.	१–०–०
× ३	उपधान विधि गुजराती	भेट	×१४	श्रीसुव्रतऋषि कथा प्राकृत	भेट
× ४	श्रीश्रीपालचरित्र सं. पद्य	"	१५	श्रीलघुप्रवचनसारोद्धार मूल	भेट
× ५	श्री[illegible] निर्विभक्तिक प्राकृत	"	१६	श्रीआवश्यकनिर्युक्ति दीपिका भा. १	३–८–०
× ६	श्रीनिशीथ चूर्णि भा. १	"	×१७	प्राचीन सज्झायकर्णिका गुजराती	०–२–०
× ७	" भा. २	"	×१८	स्वाध्यायदोहन संस्कृत	१–८–०
× ८	" भा. ३	"	×१९	प्राचीन सज्झाय पद संग्रह भा. १ गुजराती	०-१२-०
९.	प्रतिक्रमणसूत्र पदवृत्ति संस्कृत	०–६–०	×२०	जिनेन्द्रस्तवकर्णिका "	भेट
×१०	श्रीयोगशास्त्र-मूल	भेट	×२१	सिद्धाचल महातीर्थ स्तवनावली गुजराती	०–६–०
११	श्रीपिंडविशुद्धि-मूल सहित स. टीका	१-१२-०	×२२	सुरसुन्दरी रास	भेट

ग्रन्थांक	ग्रन्थनुं नाम	किंमत	ग्रन्थांक	ग्रन्थनुं नाम	किंमत
×२३	श्रीनिशीथ चूर्णी भा. ४	भेट	३३	पर्युषणाष्टाह्निका व्या० श्रीउदयसोमसू०	भेट
×२४	,, ,, ५	,,	×३४	प्रकरणमाळा मूळ	३-०-०
×२५	,, ,, ६	,,	३५	पंच प्रतिक्रमण-विधि सहित गुजराती	२-०-०
×२६	युगादि देशना स. पद्य	१-०-०	३६	जिनेन्द्र स्तवनादि काव्य सन्दोह	३-०-०
×२७	आराधना सार भाषान्तर सह	भेट	३७	तपविधि सग्रह	०-६-०
×२८	प्रतिमापूजन	०-८-०	३८	प्रकरण दोहन	१-८-०
×२९	श्रीआवश्यकनिर्युक्ति दीपिका भा. २	२-०-०	३९	तत्त्वार्थ उषा	०-८-०
×३०	प्रकरण स्तोत्रादि सग्रह	०-१०-०	४०	सामायिक चैत्य-गुरुवन्दनादि	०-४-०
×३१	देववन्दनमाला	भेट	४१	तीर्थङ्कर गणधर आगम वर्णन	०-२-०
×३२	श्रीपिण्डविशुद्धि अनुवाद गुजराती	,,	४२	श्रीआवश्यकनिर्युक्ति दीपिका भा. ३	भेट

प्राप्तिस्थानः-**श्रीविजयदानसूरीश्वरजी जैन ग्रन्थमाला,**
व्य० मास्तर हीरालाल रणछोडभाई—गोपीपुरा-सुरत.

× चोकडीवाळा ग्रन्थो खपी गयेल होवाथी मळी शके तेम नथी

॥ अर्हम् ॥

श्रीमन्माणेक्यशेखरसूरीश्वरविरचिता

आवश्यकनिर्युक्तिदीपिका-तृतीयो विभागः

अथ षष्ठं प्रत्याख्यानाध्ययनम् ।

अथ प्रत्याख्यानाध्ययनं, पाश्चात्याध्ययने व्रणचिकित्सोक्ता, इह तु मूलोत्तरगुणानां धारणा प्रोच्यते, इत्यस्याधिकारः । अस्य चत्वार्यनुयोगद्वाराणि सप्रपञ्चानि वाच्यानि यावन्नामनिष्पन्ने निक्षेपे प्रत्याख्यानाध्ययनमिति, अस्य द्वारगाथा–

पच्चक्खाणं पच्चक्खाओ, पच्चक्खेयं च आणुपुव्वीए ।

परिसा कहणाविही, या फलं च आईइ छब्भेया ॥ १५५० ॥

प्रत्याख्यायते निषिध्यते वस्त्वनेनेति प्रत्याख्यानं १, प्रत्याख्याता तस्य कारको गुरुः शिष्यश्च २, प्रत्याख्येयं प्रत्याख्यानगोचरं वस्तु ३, आनुपूर्व्या परिपाट्या वाच्यं इति शेषः । तथा पर्षद् वक्तव्या यथा ईदृशः पर्षदः कथ्यं ४, कथनविधिश्च ५ वक्तव्यः । तथा फलं चास्य ऐहिकामुष्मिकफलं कथनीयं ६, आदावेते षड् भेदाः ॥१५५०॥ प्रत्याख्यानमाह–

नामं ठवणादविए अइच्छपडिसेहमेव भावे य । एए खलु छब्भेया पच्चक्खाणंमि नायव्वा ॥१५५१॥

नामप्रत्याख्यानं १ स्थापनाप्रत्याख्यानं २ द्रव्यप्रत्याख्यानं ३ दातुमिच्छा दित्सा न दित्सा अदित्सा, सैव प्रत्याख्यानं (अदित्साप्रत्याख्यानं ४), प्रतिषेधप्रत्याख्यानं ५, भावप्रत्याख्यानं ६ ॥ १५५१ ॥ नामस्थापनाप्रत्याख्याने सुगमे, द्रव्यप्रत्याख्यानमाह–

दव्वनिमित्तं दव्वे दव्वभूओ व(उ)तत्थ रायसुआ । अइच्छापच्चक्खाणं बंभणसमणा अइच्छत्ति ॥१५५२॥

अमुगं दिज्जउ मज्झं, नत्थि ममं तं तु होइ पडिसेहो ।
सेसपयाण य गाहा, पच्चक्खाणस्स भावंमि ॥ १५५३ ॥

द्रव्यनिमित्तं प्रत्याख्यानं वस्त्रादिद्रव्यार्थमित्यर्थः, तथा द्रव्ये प्रत्याख्यानं यथा भूम्यादौ व्यवस्थितः करोति । तथा द्रव्यभूतोऽनुपयुक्तः सन् यः करोति, तुशब्दाद् द्रव्याणां द्रव्येण चेत्यादि ज्ञेयम् । तत्र राजसुताकथा यथा एकस्य राज्ञः सुता भर्त्तरि मृते पितुर्गृहमागता । धर्मार्थिनी पाखण्डिनां दानं दत्ते । अन्यदा कार्त्तिको धर्म्ममास इति मांसं प्रत्याख्याय तत्र मासे मांसं नाहरति पूर्णे च मासे पारणे नैकेषां नानाविधानि मांसानि स्वयं ददति, अन्यदा साधून् न्यमन्त्रयत् । तैर्भक्तं लात्वा मांसं निषिद्धम् । सा प्राह किं वः कार्त्तिको न पूर्णः ? तैरूचे यावज्जीवं नः कार्त्तिकः । ततो मांसदोषोक्त्या सा बुद्धा दीक्षिता । एवं तस्याः प्राग् द्रव्यप्रत्याख्यानं पश्चाद्भावप्रत्याख्यानं जातम् । अदित्साप्रत्याख्यानं हे ब्राह्मण ! हे श्रमण ! अदित्सेति न मे दातुमिच्छा, न तु नास्ति यत् त्वयाऽयाचि । ततश्चादित्सैव वस्तुनः प्रतिषेधात्मिकेति कृत्वा प्रत्याख्यानम्

॥ १५५२ ॥ प्रतिषेधप्रत्याख्यानमाह अमुकं घृतादि मह्यं दीयताम् । इतरस्त्वाह नास्ति मम तदिति न तु दातुमनिच्छा । अतोऽयं प्रतिषेध एव प्रत्याख्यानं प्रतिषेधप्रत्याख्यानम् । ५ । भावप्रत्याख्यानमाह 'सेम०' शेषपदानां आगमनोआगमेत्यादीनां माक्षादिहानुक्तानां प्रत्याख्यानानां गाथाव्याख्याप्रतिष्ठा स्वयं कार्येति शेषः । इह भावमिति भावप्रत्याख्यानं इदं वक्ष्यमाणम्–

तं दुविहं सुअनोसुअ सुयं दुहा पुव्वमेव नोपुव्वं ।
पुव्वसुय नवमपुव्वं नोपुव्वसुयं इमं चेव ॥ १५५४ ॥

तद्भावप्रत्याख्यानं द्विविधं, श्रुतप्रत्याख्यानं नोश्रुतप्रत्याख्यानं च । प्रत्याख्याननामकमेव तं श्रुतप्रत्याख्यानं, प्रत्याख्यानाख्यश्रुतादन्यद् नोश्रुतप्रत्याख्यानं, तत्र श्रुतप्रत्याख्यानं द्विधा पूर्वश्रुतप्रत्याख्यानं नोपूर्वश्रुतप्रत्याख्यानं च । तत्र पूर्वश्रुतप्रत्याख्यानं नवमं प्रत्याख्यानाख्यं पूर्वश्रुतप्रत्याख्यानं, पूर्वश्रुतादन्यत् इदमेव प्रत्याख्यानाध्ययनं आतुरप्रत्याख्यानादि च ॥ १५५४ ॥ नोश्रुतप्रत्याख्यानमाह–

नोसुअपच्चक्खाणं मूलगुणे चेव उत्तरगुणे य ।
मूले सव्वं देसं इत्तरियं आवकहियं च ॥ १५५५ ॥

मूलगुणा वि य दुविहा समणाणं चेव सावयाणं च ।
ते पुण विभज्जमाणा पंचविहा हुंति नायव्वा ॥ १५५६ ॥

नोश्रुतप्रत्याख्यानं मूलगुणा उत्तरगुणाश्च । मूलगुणाः प्राणातिपातविरत्यादयो विरतिरूपत्वात् प्रत्याख्यानम् । तथोत्तरगुणाः पिण्डविशोध्यादयोऽप्यशुद्धाहारादिविरतिरूपत्वात् प्रत्याख्यानं, उत्तरगुणविषयं वाऽनागतादिदशधाप्रत्याख्यानम् ॥ १५५५ ॥ मूलगुणप्रत्याख्यानं द्विधा सर्वमूलगुणप्रत्याख्यानं देशमूलगुणप्रत्याख्यानं च । सर्वमूलगुणप्रत्याख्यानं पञ्चमहाव्रतानि । देशमूलगुणप्रत्याख्यानं पञ्चाणुव्रतानि । एवं उत्तरगुणप्रत्याख्यानमपि द्विधा सर्वोत्तरगुणप्रत्याख्यानं देशोत्तरगुणप्रत्याख्यानं च । तत्र सर्वोत्तरगुणप्रत्याख्यानं 'दशविधमणागयमइक्कंतं' इत्याद्यग्रे वक्ष्यते । देशोत्तरगुणप्रत्याख्यानं सप्तविधं, त्रीणि गुणव्रतानि चत्वारि शिक्षाव्रतानि । पुनरुत्तर(गुण)प्रत्याख्यानं द्विधा इत्वरं, साधूनां किञ्चिदभिग्रहादिः श्रावकाणां तु चत्वारि शिक्षाव्रतानि, द्वितीयं यावत्कथिकं तच्च नियन्त्रिताख्यं प्रत्याख्यानं यद् दुर्भिक्षादिष्वप्यभग्नं स्यात् । श्रावकाणां त्रीणि गुणव्रतानि ॥ १५५६ ॥ सर्वमूलगुणप्रत्याख्यानमाह–

पाणिवहमुसावाए, अदत्तमेहुणपरिग्गहे चेव ।
समणाणं मूलगुणा, तिविहं तिविहेण नायव्वा ॥ १५५७ ॥

प्राणा इन्द्रियोच्छ्वासाद्या दश, तेषां वधः, प्राणवधादिषु विषयभूतेषु श्रमणानां मूलगुणा आद्यगुणास्त्रिविधत्रिविधेन

योगकरणत्रयाभ्यां नेतव्या प्रायाः । श्रमणः प्राणातिपातादिविरतस्त्रिविधत्रिविधेनेत्यर्थः ॥ १५५७ ॥ देशमूलगुणप्रत्याख्यानं श्रावकाणां स्यादिति तद्धर्ममेषत आह–

सावयधम्मस्स विहिं वुच्छामी धीरपुरिसपन्नत्तं ।
जं चरिऊण सुविहिया गिहिणो वि सुहाइं पावंति ॥ १५५८ ॥

शृणोति यतिभ्यो धर्ममिति श्रावकः प्रपन्नसम्यक्त्वादिगुणः, धीरा अर्हद्गणधराः, यं धर्मं चरित्वा सुविहिताः सुक्रिया गृहिणोऽपि सुखानि (प्राप्नुवन्ति) ॥ १५५८ ॥

साभिग्गहा य निरभिग्गहा य, ओहेण सावया दुविहा ।
ते पुण विभज्जमाणा, अट्ठविहा हुंति नायव्वा ॥ १५५९ ॥

तत्र सहाभिग्रहैर्मूलोत्तरगुणरूपेषु सर्वेष्वेकस्मिन् वा व्रतादौ नियमैर्वर्त्तन्त इति साभिग्रहाः, निरभिग्रहाः केवलसम्यग्दर्शनिनः कृष्णश्रेणिकादयः । ओघेन सामान्येन ते पुनर्द्विविधा अपि विभज्यमाना अष्टविधाः स्युः ॥ १५५९ ॥ यथा

दुविहतिविहेण पढमो दुविहं दुविहेण बीयओ होइ ।
दुविहं एगविहेणं एगविहं चेव तिविहेणं ॥ १५६० ॥

एगविहं दुविहेणं इक्किकविहेण छट्ठओ होइ ।
उत्तरगुण सत्तमओ अविरयओ चेव अट्ठमओ ॥ १५६१ ॥

कश्चनाभिग्रहं लाति, सद्योऽत्र लाति, द्विविधं त्रिविधेनेति प्रथमो भेदः १। कोऽर्थः? द्विविधं इति योगविशेषणं त्रिविधेनेति करणविशेषणम् । तत्र योगाः करणकारणानुमतिरूपा व्यापाराः, करणानि योगसाधकानि मनोवाक्कायरूपाणि, ततोऽयं अर्थः । प्राणा जीवास्तेषां अतिपातं विनाशं, द्विविधं करणकारणरूपं, त्रिविधेन मनसा वाचा कायेन प्रत्याख्यामि इति १ । एवं द्विविधं द्विविधेनेति, कोऽर्थः? द्विविधं कृतकारितादिरूपं द्विविधेन मनोवाग्-मनःकाय-वाक्कायरूपेण प्रत्याख्यामि २ । द्विविधं योगं एकविधेन मनसा वाचा कायेन वा करणेनेति तृतीयः ३ । एकविधं योगं कृतं कारितं वा त्रिविधेन करणेनेति तुर्यः ४ । एकविधं योगं द्विविधेन करणेनेति पञ्चमः ५ । एकविधं योगं एकविधेन करणेनेति षष्ठः ६ श्रावकभेदः, श्राद्धस्यानुमतिनिषेधाभावात्त्रिविधं योगमिति भङ्गो नोक्तः, यदा मनसा वाचा निषिद्धः तदा कायेन शून्यतया करोति, यदा तु वाचा कायेन निषिद्धः तदा मनसा हिंसकः, यदा मनोवाग्भ्यां (मनःकायाभ्यां) निषिद्धः तदा शून्यतया हिंसकवाग्भाषीत्यादि-भङ्गा ज्ञेयाः । अनुज्ञा तु त्रिभिरप्यस्तीति सर्वत्र भाव्यम् । तथा कोऽपि उत्तरगुणानां मध्ये कमप्यभिग्रहं लाति, एष सप्तमो भङ्गः ७ । कोऽपि नियमाग्रहणादविरतोऽष्टमो भेदः ८ ॥ १५६०–६१ ॥

पणय चउक्कं च तिगं दुगं च एगं च गिण्हइ वयाइं ।
अहवा वि उत्तरगुणे अहवा वि न गिण्हई किंचि ॥ १५६२ ॥

कोऽपि पञ्चाणुव्रतान्यादत्तेऽन्यः ४–३–२–१ इति पञ्चभेदाः, द्विविधं द्विविधेन प्रत्याख्यामीति प्रागुक्तैः षड्भङ्गैर्गुणितास्त्रिंशद्भेदाः स्युः । अथवा कोऽप्युत्तरगुणमध्ये नियम लाति ३१, कोऽपि कश्चन नियमं न लाति सम्यक्त्वेव(क्त्येव) स्यात् ३२, एवं ३२ श्राद्धभेदाः ॥ १५६२ ॥ स तु श्राद्धः सर्वोऽपि निश्चलसम्यक्त्व(क्त्वी) एव स्याद्यतो मूलोत्तरगुणानामाधारः सम्यक्त्वं तत आह—

निस्संकिय निक्कंखिय निव्वितिगिच्छा अमूढदिट्ठी य ।
वीरवयणंमि एए बत्तीसं सावया भणिया ॥ १५६३ ॥

वीरवचने श्रीवीरशासने निःशङ्किताः शङ्कारहिताः, निष्काङ्क्षिताः काङ्क्षारहिताः, निर्विचिकित्सा विचिकित्सारहिताः, शङ्कादयोऽग्रे वक्ष्यन्तेऽमूढदृष्टिः (ष्टयः) विचारेषु न मूढा दृष्टिरान्तरा मतिरूपा येषां ते । एते द्वात्रिंशदपि श्रावकभेदाः सम्यग्दर्शनिनो भणिताः ॥ १५६३ ॥

सीयालं भंगसयं पच्चक्खाणंमि जस्स उवलद्धं ।
सो खलु पच्चक्खाणे कुसलो सेसा अकुसला उ ॥१५६४॥

यस्य पुंसः सप्तचत्वारिंशदधिकं भङ्गशतं विशोध्यं प्रत्याख्याने उपलब्धं ज्ञातं स्यात् ॥ १५६४ ॥

सीयालं भंगसयं गिहिपच्चक्खाणभेयपरिमाणं ।
तं च विहिणा इमेणं भावेयव्वं पयत्तेणं ॥१५६५ ॥

तिन्नि तिया तिन्नि दुया तिन्निक्किक्का य हुंति जोगेसुं ।
तिदुइक्कं तिदुइक्कं तिदुएगं चेव करणाइं ॥ १५६६ ॥

पढमे लब्भइ एगो सेसेसु पएसु तिय तिय तियं ति ।
दो नव तिय दो नवगा तिगुणिय सीयाल भंगसयं ॥ १५६७ ॥

सप्तचत्वारिंशं भङ्गशतं गृहिणां एकैकव्रतरूपे प्रत्याख्याने भेदपरिमाणं, तच्चानेन वक्ष्यमाणेन विधिना भाव्यं, यथा त्रयस्त्रिकास्त्रयो द्विकास्त्रय एकका योगेषु भवन्ति, त्रीणि द्वे एकं त्रीणि द्वे एकं त्रीणि द्वे एकं च करणानि । प्रथमं त्रिविधं त्रिविधेनेति भङ्गे एको भेदो लभ्यते । शेषेषु भङ्गेषु त्रिकं त्रिकं चेति भेदा लभ्यन्ते । तथा त्रीणि नव नव त्रीणि नव नव च एवं सर्वे लब्धभेदाः ४९ भवन्ति । ते च कालत्रयेण गुणितास्त्रिगुणिताः सप्तचत्वारिंशं भङ्गशतं स्यात् । स्थापना

३	३	३	२	२	२	१	१	१	योगाः
३	२	१	३	२	१	३	२	१	करणानि
१	३	३	३	९	९	३	९	९	लब्धभेदाः

सामायिकाध्ययने एते ४९ भेदाः स्पष्टाः कृताः भवन्ति । तत्र गृहिणो दीक्षार्थिनः एकादशीं प्रतिमां प्रपन्नस्य (स्व)विषयबाह्यारम्भाहारादीनामेव त्रिविधं त्रिविधेन नियमः स्यान्नान्येषाम् । एते च १४७ भेदाः पञ्चव्रतानां स्युः । ततः पञ्चगुणाः ७३५ भेदाः स्युः, यद्वा ३२ श्राद्धभेदा एवं 'पंच-ण्हमणुव्वयाणं, इक्कगदुगतिगचउक्कपणएहिं । पंचगदसदसपणइक्कगे य संजोग कायव्वा ॥१॥' पञ्चानां अणुव्रतानां एकयोगे पञ्चभङ्गाः, कोऽर्थः? कोऽप्याद्यं एकमेवोच्चरति १, अन्यो द्वितीयं एकमेव २, एवं तृतीयादिष्वपीति ५ भेदाः । ततः द्विव्रतयोगे १०, त्रिव्रतयोगे १०, चतुर्व्रत-योगे पञ्च, पञ्चव्रतयोगे १ भेदः, यथा (कोऽपि) प्र०, कोऽपि द्वि०, एवं तृ० च० पं०, एवं पञ्चभङ्गाः । द्वियोगे यथा कोऽप्याद्यं व्रतं द्वितीयं व्रतं चादत्ते १, कोप्याद्यतृतीये २, कोऽप्याद्यतुर्ये ३, कोप्याद्यपञ्चमे ४, एवं द्वितीयतृतीये ५, द्वितीयतुर्ये ६, द्वितीयपञ्चमे ७, तृतीयतुर्ये ८, तृतीयपञ्चमे ९, कोऽपि चतुर्थपञ्चमे १० लाति । त्रिकयोगे यथा प्र० द्वि० तृतीयानि कोऽपि लाति, परः प्र० द्वि० तुर्याणि २, एवं प्र० द्वि० पं० ३, प्र० तृ० च० ४, प्र० तृ० पं० ५, प्र० च० पं० ६, द्वि० तृ० च० ७, द्वि० तृ० पं० ८, द्वि० च० पं० ९, तृ० च० पं० १० । चतुर्योगाः प्र० द्वि० तृ० च १, प्र० द्वि० तृ० पं० २, प्र० द्वि० च० पं० ३, प्र० तृ० च० पं० ४, द्वि० तृ० च० पं० ५ । पञ्चयोगस्यैकः प्राणातिपातादीनि पञ्चापि कोऽप्या-दत्ते भङ्गः १, एवं भेदाः ३१, अथवा कोऽपि कञ्चिन्नियमं प्रपद्यते, एवं ३२ श्राद्धभेदाः । अत्रैकयोगे पञ्चभेदाः द्विविहं

तिविहेणं पढमो, इत्यादि ६ भङ्गैर्गुणिता जाताः सर्वेऽपि ३० भेदाः, द्विकयोगे तु थूलगं पाणाइवायं पच्चक्खामि थूलगं मुसावायं पच्चक्खामि दुविहं तिविहेणं १, तथा थूलगं पाणाइवायं पच्चक्खामि दुविहं तिविहेणं थूलगं मुसावायं पच्चक्खामि दुविहं ति(दु)विहेणं २, एवं आद्यं दुविहं तिविहेणं द्वितीयं दुविहं एगविहं(हेणं) ३, तथाद्यं तथैव द्वितीयं तु एगविहं तिविहेणं ४, आद्यं तथैव द्वितीयं एगविहं दुविहेणं ५, आद्यं तथैव द्वितीयं एगविहं एगविहेणं ६, एवं भङ्गाः ६ षट् एकेनाद्यव्रतस्थेन दुविहं तिविहेण पदेन लब्धाः, तत आद्यं व्रतं दुविहं दुविहेणं द्वितीयं दुविहं तिविहेणं १, पुनराद्यं दुविहं दुविहेणं द्वितीयं दुविहं दुविहेणं २ आद्यं तथैव द्वितीयं दुविहं एगविहेणं ३ इत्यादिभङ्गाः ६ आद्यव्रतस्थेन दुविहं दुविहेण पदेन लब्धाः एवं भङ्गाः १२, तत आद्यं दुविहं एगविहेणं द्वितीयं तु दुविहं तिविहेणेत्यादि ६ भङ्गा दुविहं एगविहेण लब्धाः, एवं भङ्गाः १८, तत आद्यं एगविहं तिविहेणं द्वितीयं तु दुविहं दुविहेणं इत्यादिषड्भङ्गैः सर्वे २४ भङ्गाः । तत आद्यव्रते एगविहं दुविहेणं पदेन द्वितीयव्रतषड्भङ्गैः ३० भङ्गाः, तत आद्य एगविहं एगविहेणं द्वितीये तु षड्भङ्गपरावर्त्तिते ३६ भङ्गा जाताः, एवं आद्यद्वितीयव्रतद्वयरूपे प्रथमे द्विकयोगे ३६ श्राद्धभेदा जाताः । यतः कोऽपि आद्यभेदेन कोऽपि द्वितीयभेदेनोच्चरतीत्यादि । एवं शेषाणां द्विकयोगानां नवानां ३६ भङ्गाः स्युर्जाताः ३६० एते एव भेदास्त्रिकयोगे षड्गुणाः २१६० भेदाः स्युः, यतो ये द्विकयोगे भङ्गाः सन्ति त एव तृतीयेन षड्भिर्भङ्गैः परावर्तितेन गुण्यन्ते । तत्र परावर्त्तनकार्यं पश्चिमानुपूर्व्यैव यथादौ अन्त्यव्रतं षड्भङ्गैर्गुण्यते । तावत्प्रथमद्वितीयव्रतयोरेकमेव दुविहं तिविहेणं पदं स्थाप्यते । ततो द्वितीये दुविहं दुविहेणं कथ्यते । आद्ये च दुविहं तिविहेणं पदं अन्त्यव्रते च षड्भङ्गाः प्राग्वत् । ततो द्वितीयं द्विविधैकविधादिभङ्गाः क्रमेण क्रियन्ते । एवं ३६

भङ्गः कर्तव्ये दुविहं दुविहेणं स्थाप्यते, एवं यावत् प्रथमस्थाने एगविहं एगविहेण पदं स्थापितं, एवं २१६ भङ्गा जाताः पाश्चात्ये १२९६ ततः पाश्चात्ये ७७७६ भेदाः। तत्र सर्वसङ्ख्या पञ्चव्रतानां लिख्यते। एकयोगे ३० द्वियोगे ३६० त्रियोगे २१६० चतुर्योगे ६४८० पञ्चयोगे ७७७६। सर्वे त्रिंशदादिभङ्गा एकत्र मीलिताः १६८०६ तथा उत्तरगुणान् दिग्व्रतादीन् कोऽपि लाति कोऽप्यविरत एव। एवं १६८०८ श्राद्धभेदाः। अत्र गाथाः

भङ्गः कर्तव्ये ... (see below)

वयमिक्कगसंजोगाण हुंति पंचण्ह तीसई भंगा।
दुगसंजोगाण दसण्ह तिन्नि सट्ठा सया हुंति ॥ १ ॥
संजोगाण दसण्ह भंगसयं इक्कवीसई सट्ठा।
चउसंजोगाण पुणो चउसट्ठिसयाणिऽसीयाणि ॥ २ ॥
सत्तुत्तरिं सयाइं छसत्तराइं च पंच संजोए।
उत्तरगुण अविरयमेलियाण जाणाहि सव्वग्गं ॥ ३ ॥

सोलस चेव सहस्सा अट्ठसया चेव हुंति अट्ठहिया।
एसो उवासगाणं वयगहणविही समासेणं ॥ ४ ॥

६
४८
३४२
२४००
१६८०६
११७६४८
८२३५४२
५७६४८००
४०३५३६०६
२८२४७५२४८
१९७७३२६७४२
१३८४१२८७२०

षड्भङ्गीप्ररूपणा ॥

कालत्रयेणैतैर्भङ्गैस्त्रिगुणितेनागतमाह–' पन्नाससहस्साइं, चत्तारि सयाइं तह य चउवीसा। काल-तियगुणियमेयं अणुव्वयाणं छभंगीए ॥ १ ॥ एष संक्षेपव्रतग्रहणविधिः। तथात्र षड्भङ्गादयो विकल्पाश्चत्वारः स्युस्तत्र षड्भङ्ग्यां आद्यव्रते षड्भङ्गाः, आद्यद्वितीययोस्तु प्रत्येकोच्चारे १२ संयुक्तोच्चारे तु ३६ भङ्गा एवं ४८ भङ्गाः। आद्यद्वित्रियोगे प्रत्येकं ग्रहणे १८ द्विसंयोगे ३६ त्रिगुणाः क्रियन्ते १०८ जायन्ते यतः प्राणा० मृषा०, अद० मृ०, प्रा० अद०, एवं त्रियोगे २१६ भेदाः सर्वे ३४२ एवं द्वादशव्रतैरपि ज्ञेयाः। इह सामायिकपौषधसंविभागेषु षड्भङ्ग्यादि तदतीचाराणां न करोमीत्यादिप्रकारो ज्ञेयः, अन्यथा वा स्वधिया भाव्यं, सामायिके वा बहुसो सामाइयं कुज्जा मध्यस्थो भूयादिति युक्त्या पौषधे नियमरूपपौषधयुक्त्या वा चिन्त्यम्। सर्वसङ्ख्यैवं इह आद्यव्रते ६ भङ्गास्ततो द्विकादियोगेषु पाश्चात्यः पाश्चात्योऽङ्कः सप्तगुणः षड्युतश्च क्रियते। एषा स्थापना चैवम्।

अथ नवभङ्गी यथा । मणेणं न करेमि १ वायाए न करेमि २ काएणं न करेमि ३ मणेणं न कारवेमि ४ वायाए न कार० ५ कायेणं न कार० ६ मणेण नाणुजाणामि ७ वायाए नाणुजाणामि ८ काएणं नाणुजाणामि ९ एवं नवभङ्गाः एकैकव्रते, ततो द्वादशव्रतेषु स्थापना यथाद्ये एको नवकः, व्रतद्वये ९९ द्वौ नवकौ, व्रतत्रये ९९९ त्रयो नवकाः यावद् द्वादशव्रतयोगे द्वादशनवकाः । एवं नवभङ्गी । अथ षड्भङ्ग्या भेदे २१ भेदाः, अत्रायमर्थः दुविहं तिविहेणभेदे १ एको भङ्गः । दुविहं दुविहेणभेदे त्रयो भङ्गाः, यथा न करेमि न कारवेमि मणेणं वायाए १, न क० न का० मणेणं काएणं २, न क० न का० वायाए काएणं ३ । तथा द्विविधं एकविधेनेत्यत्रापि ३ भङ्गाः । न करेमि न कारवेमि मणेणं १, न क० न का० वायाए २, न क० न का० काएणं ३ । तथा एगविहं तिविहेणं भङ्गद्वयं यथा मणेणं वायाए काएणं न करेमि १, मणेणं वायाए काएणं न कारवेमि २ । एगविहं दुविहेणं भङ्गा ६ यथा मणेणं वायाए न करेमि १, मणेणं काएणं न करेमि २, वायाए काएणं न करेमि ३, मणेणं वायाए न कारवेमि ४, मणेणं काएणं न कारवेमि, ५ वायाए काएणं न कारवेमि ६ । एगविहं एगविहेणं भङ्गा ६ यथा मणेणं न करेमि १, वायाए न क० २, काएणं न क० ३, मणेणं न का० ४, वायाए न का० ५, काएणं न कारवेमि ६, एवं एकविंशतिभङ्गाः । अत्रैकद्विकादिसंयोगसंख्यागाथा 'एगाईनयतुल्ला, उवरुवरिं पक्खिवे चरमवज्जं । छ छगगुणिया गुणकारा ते ठवइ अग्गे' ॥ एकद्व्यादयो व्रतमाना अङ्का ऊर्ध्वं ऊर्ध्वं स्थाप्यन्ते । तत्र ५ व्रतस्थापना यथा । ततोऽन्त्याङ्कवर्जं पाश्चात्योऽङ्कोऽग्रे मील्यते । एवं ऊर्ध्वोर्ध्वाङ्कनिवृत्त्या पूर्वपूर्वाङ्कोऽग्रे योज्यः, इति एकद्व्यादिसंयोगसङ्ख्या स्यात्, सा च षड्भङ्ग्यां षड्गुणषड्गुणवृद्धाङ्कस्य गुणकाररूपा ज्ञेया तद्गुणः षड्गुणाङ्कः क्रियते इत्यर्थः, एवं भङ्गकसङ्ख्या स्यात् । सा चाग्रे

३

लेख्या यथा एको द्विके क्षिप्तो जातस्त्रिकः, स (च) त्रिके क्षिप्तो जाताः षडित्यादि यावदन्त्यं पञ्चकं मुक्त्वा पश्चाद्दश जाताः।

अथ एकविंशतिभङ्गैः सर्वव्रतभेदा लिख्यन्ते। तत्राद्यव्रते २१ ततस्त एव द्वाविंशतिगुणा एकविंशतियुक्ताश्च सर्वव्रत-संख्या क्रमात्, स्थापना। एकोनपञ्चाशद्भङ्ग्यां एकव्रते ४९, व्रतद्वये २४९९, व्रतत्रये १२४ ततो नवकत्रयं, व्रतचतुष्के ६२४ नवकचतुष्कं एवं ३१२४ नवकपञ्चकं, १५६२४ नवकषट्कं। एवं व्रतवृद्ध्या लिखिताङ्केभ्यो नवकवृद्धिर्ज्ञेया यावद् द्वादश(मे)व्रते द्वादश नवकाः। ७८१२४, ३९०६२४, १९५३१२४, ९७६५६२४, ४८८२८१२४, २४४१४०६२४।

२३	१
२२	३
२१	३
१३	२
१२	६
११	६
एवं २१	

२१
४८३
१०६४७
२३४२५५
५१५३६३१
११३३७९९०३
२४९४३५७८८७
५४८७५८७३५३५
१२०७२५९२१७७९१
२६५५२९२२७९१४२३
५८४३१८३०१४११३२७
१२८५५००२६३१०४९२१५

४९
२४९९
१२४९९९
६२४९९९९
३१२४९९९९९
१५६२४९९९९९९
७८१२४९९९९९९९
३९०६२४९९९९९९९९
१९५३१२४९९९९९९९९९
९७६५६२४९९९९९९९९९९
४८८२८१२४९९९९९९९९९९९
२४४१४०६२४९९९९९९९९९९९९

तिविहं तिविहेणं	३३	१
तिविह दुविहेण	३२	३
तिविहं एगविहेण	३१	३
दुविहं तिविहेणं	२३	३
दुविहं दुविहेणं	२२	९
दुविहं एगविहेणं	२१	९
एगविहं तिविहेणं	१३	३
एगविहं दुविहेणं	१२	९
एगविहं एगविहेणं	११	९

एवं ४९ भङ्गाः

तत्र यस्मात् श्रावकः धर्म्मस्य मूलं सम्यक्त्वं तत्त्वार्थश्रद्धानरूपं उपसम्पद्यतेऽतस्तद्विधिः—

तत्थ समणोवासओ पुव्वामेव मिच्छत्ताओ पडिक्कमइ, सम्मत्तं उवसम्पज्जइ, नो से कप्पइ अज्जप्पभिई अन्नउत्थिए वा अन्नउत्थिअदेवयाणि वा अन्नउत्थियपरिग्गहियाणि अरिहंतचेइयाणि वा वंदित्तए वा नमंसित्तए वा पुव्विं अणालत्तएणं आलवित्तए वा संलवित्तए वा तेसिं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा दाउं वा अणुप्पयाउं वा, नन्नत्थ रायाभिओगेणं गणाभिओगेणं बलाभिओगेणं देवयाभिओगेणं गुरुनिग्गहेणं वित्तीकंतारेणं, से य सम्मत्ते पसत्थसम्मत्तमोहणियकम्माणुवेयणोवसमखयसमुत्थे पसमसंवेगाइलिङ्गे सुहे आयपरिणामे पन्नत्ते, सम्मत्तस्स समणोवासएणं इमे पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तंजहा–संका कंखा वितिगिच्छा परपासंडपसंसा परपासंडसंथवे (सूत्रम्)

तत्र श्रमणानां यतीनां उपासकः श्रावकः पूर्वमेवादावेव श्रावको भवन् मिथ्यात्वात्तत्त्वाश्रद्धानरूपात् प्रतिक्रामति निवर्त्तते। सम्यक्त्वमुप सामीप्येन सम्पद्यते स्वीकुरुते। से तस्य नो कल्पते नो युज्यते। अद्यप्रभृति सम्यक्त्वप्रतिपत्तेरारभ्यान्यतीर्थिकांस्तापसादीन् अन्यतीर्थिकदैवतानि रुद्रादीनि अन्यतीर्थिकपरिगृहीतानि वार्हच्चैत्यान्यर्हत्प्रतिमारूपाणि महाकालवीररुद्रादीनि बोटिकानि वा वन्दितुं स्तोतुं नमस्कर्तुं, वा समुच्चये, न कल्पते इति सम्बन्धः। तद्वन्दनादेर्मुक्त्यर्थिनामप्रयोजनात् मिथ्यादृशां स्थिरीकरणादेश्च। तथान्यतीर्थिकैः पूर्वं अनालप्तेन सता तान् आलप्तुं सकृद्वादयितुं वार्त्तां कर्त्तुं संलप्तुं पुनःपुनर्वादयितुं, यतस्ते सारम्भाः स्युः, वादिताश्च गृहागमादिप्रसङ्गमारम्भं च कुर्युः, शिशूनां च विकथादिप्रसङ्गस्नेहौ स्याताम्। तेषामशनादि

दातुं सकृत् अनुप्रदातुं असकृद्दातुं च नो मम कल्पते, किन्तु अन्यत्र राजाभियोगाद्याकारेभ्यः राजाभियोगादि विनेत्यर्थः। राजाभियोगादौ ददद् धर्म्मं नातिक्रमते। तत्र राजाभियोगो राजाग्रहः, गणो जनवृन्दं, बलाभियोगो बलात्कारः, देवताभियोगो देवताग्रहः। गुरुनिग्रहो गुर्वादेशः। वृत्तिकान्तारं दुर्भिक्षम्। तत्र राजाभियोगे कार्तिकश्रेष्ठी दृष्टान्तः, स नैगमाष्टसहस्रमुख्यो हस्तिनापुरे गृहीतसपरिवारजितशत्रुराजाग्रहाल्लिङ्गिनो मास(क्षपण)पारणे स्वयं परिवेषकोऽभूत्, लिङ्गी च तदाङ्गुलिं चालितवान् कथं ते सम्यक्त्वमिति तेन निर्वेदेन नैगमाष्टसहस्रयुक् श्रीसुव्रतार्हत्पार्श्वे प्रव्रज्य चतुर्दशपूर्वी द्वादशसमपर्यायः सौधर्मे शक्रत्वं प्राप्तो लिङ्गी च तेनाभियोगेनैरावणोऽभूदिन्द्रं दृष्ट्वा नष्टो गृहीतः शक्र आरूढः द्वे शीर्षे कृते शक्रावपि द्वौ जातौ। एवं यावन्ति शीर्षाणि करोति तावन्ति शक्रोऽपि रूपाणि। ततो नश्यन् वज्राहतः स्वस्थोऽस्थात्। गणाभियोगेन वरुणो रथमुशले युद्धे प्रवृत्तः। एवं श्राद्धोऽपि गणाभियोगादन्यतीर्थिकानां ददाति। देवताभियोगे कोऽपि नवश्राद्धो जातः। पूर्वगोत्रजादिव्यन्तराण्यत्यजत्, सुर्या तद्गावः सुतश्चापहृताः श्राद्धं च वक्ति किं मां त्यजसि ? श्राद्धेनोक्तं अर्हत्प्रतिमान्ते तिष्ठ तत्रार्चयामि। ततः सुरी तत्र स्थिता गाः सुतं (च) आनयत्। ३ गुरुनिग्रहे बौद्धः श्रावकपुत्रीं छद्मना परिणेतुं कपटश्राद्धो भूत्वा सम्यग् निविष्टे श्राद्धो जातः, छद्मालोच्य श्रेष्ठिनोद्वाहितः। पृथग् गृहं कृत्वा स्थितः। अन्यदा पितृभ्यां बौद्धभिक्षुभ्यो भक्तं विधायाग्रहेणाह्वानाय प्रेषितः। तैरभिमन्त्रितफलदानेन परावृत्तो गृहमेत्य प्रियामूचे भिक्षुभ्यो भक्तं दद्मः श्राविका नैच्छत्। तत्सेवका भोज्यं कर्त्तुं प्रवृत्ताः। श्राविकया गुरुभ्य ऊचे। तैर्योगप्रतिभेदो दत्तः, स तयाऽम्भसा तस्य दत्तः। बौद्धव्यन्तरा नष्टाः। स भावुके जातेऽवक् किमेतद्भोज्यम् ?। ततः प्रियोक्त्या ज्ञात्वा तत्प्रासुकं

साधुभ्यो ददौ । भृतिकान्तारे सौराष्ट्रिकः श्राद्धोऽवन्त्यां दुर्भिक्षे यान् शम्बलभृद्दौ बौद्धसम्बलं निर्वाहाय वदन् तैर्निर्वाप्यते मोऽतिसारान्मृतस्तैरन्ते स्वरक्ताम्बरैर्वेष्टयित्वा त्यक्तः । स नमस्कारेण मृत्वा वैमानिकदेवो जातः । स्वं मवं वीक्ष्यमाणो रक्तवस्त्राच्छादितदेहं दृष्ट्वा प्रागभवे स्वं बौद्धं मन्यमानो बौद्धभिक्षूणां भक्तिं चक्रे । भिक्षाकाले भूपितकरेणाकाशस्थेन तेभ्यो भिक्षां दत्ते । तेन बौद्धोन्नतिर्जाता । श्राद्धैर्गुरूणामागतानां ज्ञापितम् । गुरुभिरूचे । देवस्य करं लात्वा भणत ' नमो अरिहंताण बुज्झ गुज्झगा ' । तैस्तथाकृते देवः सम्बुद्धो नत्वा लोकमूचे । बौद्धेषु न धर्म्मः, जैनधर्म्मः सत्य इति स श्राद्धोऽभूत् । अन्यतीर्थिकाणां तद्भक्तानां च दाने मिथ्यात्वस्थिरीकरणं, भक्तदाने तु सम्यक्त्वलाञ्छनं आरम्भदोषश्च, दयागोचरत्वं प्राप्तानां तु दद्यादपि यतः ' सव्वेहिं पि जिणेहिं दिज्जइ (दुज्जय) जियरागदोसमोहेहिं सत्ताणुकंपणट्ठा दाणं न कहिं व (कहिंचि) पडिसिद्धं ' । तथाऽर्हन्तोऽप्यनुकम्पया सांवत्सरदानं ददति । अत्र क्षेपकं पदं । ' से य सम्मत्ते पसत्थेत्यादि ' । तत्सम्यक्त्वं किमुच्यते इत्याह प्रशस्ता उज्ज्वलीकृता मिथ्यात्वपुद्गलास्ते सम्यक्त्वमोहनीयकर्म्मणिव उच्यन्ते तद्वेदनसमुत्थं आधुनिककाले वर्तमानं क्षायोपशमिकसम्यक्त्वम् । तथा सम्यक्त्वाणूपशमसमुत्थं प्राग्वर्णितं औपशमिकं सम्यक्त्वम् । तथा सम्यक्त्वाणुक्षयसमुत्थं क्षायिकसम्यक्त्वम् । एते द्वे अधुना न स्तः । परं सम्यक्त्वं सर्वं प्रशमसंवेगादिलिङ्गः प्रशमसंवेगादिलक्षणं शुभ आत्मपरिणामः प्रज्ञप्तोऽर्हता । एतावता शुभपरिणामस्तत्त्वत्रयश्रद्धानरूपः सम्यक्त्वं स्यादित्यर्थः । 'सम्मत्तस्स' श्रमणोपासकेन श्रावकेणेमे पञ्च, 'अतिचरति' सम्यक्त्वं यात्येभिरित्यतिचाराः दोषा ज्ञातव्याः श्रद्धानज्ञानाभ्यां न तु समाचरितव्याः । तत्रथेत्युदाहरणोपन्यासे । शङ्का मतिदौर्बल्याज्जिनोक्तेषु संशयः शङ्का, सा द्विधा देशतः सर्वतश्च, तत्र देशतः किं जीवो

देहमात्रो विश्वमात्रो वेत्यादिरूपा । सर्वतः किं जीवोऽस्त्यर्हन्नभून्नवेत्यादि । तत्र सर्वार्हदाज्ञा प्रमाणमेव कार्या । 'पयमक्खरं पि एक्कं जो य न रोएइ यो न रोचयति न श्रद्धत्ते सुत्तनिद्दिट्ठं । सेसं रोयन्तो रोचमानो वि हु मिच्छा(च्छ)दिट्ठी मुणेयव्वो' ।१। इह संशयोऽपि मिथ्यात्वमेव ।१। काङ्क्षा परदर्शनेष्वभिलाषः । सा च द्विधा देशतः सर्वतश्च । देशतः सौगतं दर्शनं काङ्क्षति । सर्वतः सर्वदर्शनानि काङ्क्षति । अथवैहिकामुष्मिकफलानि काङ्क्षति, तदपि न युक्तं समयनिषिद्धत्वात्, मुक्तिं विनान्या काङ्क्षा न कार्या २ । विचिकित्सा पुण्यफलं प्रति सन्देहः । यद्वा विदो विद्वांसस्तेषां जुगुप्सा विजु(ज्जु)गुप्सा साधूनां निन्दा यथा 'अस्नाना एते' इत्यादि ३ । परपाखण्डानां परमतानां प्रशंसा स्तुतिः । तानि यथा ' असीइसयं किरियाणं अकिरियवाईण होइ चुलसीई । अण्णाणी सत्तट्ठी वेणइयाणं तु बत्तीसं । १ । कालो १ सहाव २ नियई ३ पुव्वकयं ४ पुरिस कारणे पंच । समवाए सम्मत्तं एगंते होइ मिच्छत्तं ' । २ । अत्रैकान्तवादिनां मतं लिख्यते । कालवादी वक्ति कालेन विश्वमुत्पद्यते कालेन वर्द्धते, कालेन जरामेति, कालेन विनश्यति । अतः काल एव विश्वोत्पत्तिहेतुः । १ । स्वभाववाद्याह– स्वभावेन सर्वविश्वोत्पत्तिः स्यात् । कः कण्टकान् तीक्ष्णान् करोति, को मोरं चित्रयति, कोऽब्जानि सुरभयति इत्यादिकं सर्वं स्वभावेन निष्पद्यते । नरस्य नृस्वभावः, स्त्रियाः स्त्रीस्वभावः इत्यादि ।२। नियतिवाद्याह–नियतिर्भवितव्यता कथ्यते । सा यत्करोति तद्भवति । यद्भावि वर्त्तते तदिन्द्रेणापि न रक्ष्यते । यद्भावि नास्ति तत्केनापि न भवति । यद्वस्तु यदा भाव्यस्ति तत्तदैव भविष्यति किं स्यात् बहूपक्रमैरपि । तथा प्रसृतिं भूत्वा कपर्दानि क्षिप्तानि एकानि समानि पेतुः अन्यान्यधोमुखानि पेतुरित्यादौ नियतेरेव प्रमाणम् । इह नियतिर्नाम द्रव्यक्षेत्रभावैर्विशिष्टः कालभेदः ३ । कर्म्मवाद्याह

त्रीणि शतानि त्रिषष्ट्यधिकानि पाखण्डिनः ।

गरकर्म्म करोति तदेव स्यात् अन्यत्सर्वं वृथा ४। पुरुषकारवाद्याह आत्मोपक्रमेणैव विश्वं निष्पद्यते। आत्मा विश्वं सृजति आत्मा पालयति आत्मा संहरति। यावदेते पञ्चवादिनः स्वीयं स्वीयं मतं स्थापयन्ति तावन्मिथ्यात्वं चेत्समवायेन पञ्चापि कालादीन् मन्यन्ते तदा सम्यक्त्वं स्यात्। यो भार एकेन द्वाभ्यां त्रिभिश्चतुर्भिरनुत्पाट्यः सन् पञ्चभिर्जनैरुत्पाटितः स्यात् स चेदेकेनोत्पाटितः कथ्यते तर्हि मिथ्या, पञ्चभिरुत्पाटितः कथ्यते तर्हि सम्यक्। तथा विश्वं पञ्चभिर्निष्पाद्यमानमस्ति। तत्रैकं स्थाप्यते तन्मिथ्यात्वम्। समवायो यथा केनापि जीवेन स्थानाद्युपक्रमं कृत्वा वृक्ष आरोपितः, जीवयोगात् कालेन वर्द्धितः, स्वभावेन मधुरादिरसो जातः, कर्म्मतश्चिरस्थायी भूतः, भवितव्यतया यथासङ्ख्यं पत्रफलशाखादिवा(मा)नजनि। इत्थं सर्वस्मिन् जीवाजीवरूपे विश्वे पञ्चापि वचांसि ज्ञेयानि। तथात्र नवतत्त्वेऽशीतिशतक्रियावादिन इति नाम्ना पाखण्डिनो भवन्ति, भणन्ति च जीवोऽस्ति क्रियां च करोति। तत्रैके आहुः अस्ति जीवः स्वतो नित्यः कालतः १। एके आहुः अस्ति जीवः स्वतोऽनित्यः कालतः २। एके आहुः अस्ति जीवः परतो नित्यः कालतः ३। एके आहुः अस्ति जीवः परतोऽनित्यः कालतः ४। स्वत इति आत्मस्वरूपेण। परत इति घटादिपदार्थापेक्षया ह्रस्वत्वदीर्घत्ववदिति। एवं जीवपदं चतुर्द्धा काल-वाद्याह। इत्थमेव स्वभाव २ नियतीश्वरात्मवादिनः पञ्चापि चतुर्द्धा चतुर्द्धा वदन्ति। एवं विंशतिर्जीववादिनो जाताः। एवं अजीवपुण्यपापाश्रवसंवरनिर्जराबन्धमोक्षेषु प्रत्येकं प्रत्येकं विंशतिर्वादिनो भवन्ति। एवं सर्वेऽशीतिशतक्रियावादिनो भवन्ति। तत्रेश्वरो नैयायिकैर्मन्यते। मीमांसकैः सर्वत्रैक एवात्मा मन्यते। तथाऽक्रियावादिनः 'सर्वं क्षणे क्षणे विनश्यति अतः कारणात् कोऽपि क्रियां न करोति' ईदृशं वदन्ति। ते चतुरशीतिभेदाः स्युः। तत्रैके इत्थमाहुः नास्ति आत्मा स्वतः

कालतः १ । एके आहुः नास्त्यात्मा परतः कालतः २ । इत्थं जीवमाश्रित्य कालवादिभेदद्वयेन भवति । इत्थं स्वभाव २ यदृच्छा ३ नियति ४ ईश्वर ५ आत्मवादिनो भेदद्वयेन भवन्ति । एवं जीवमाश्रित्य वादिनां द्वादशभेदाः स्युः । तत्र यदृच्छा सा कथ्यते यत्किञ्चिदकस्माज्ञायते, सा नियतेरेव भेदः । उपक्रमे क्रियमाणे न टलति सा नियतिः स्यात् । अथवा यदृच्छा सा कथ्यते या न नियतित्वेनोत्पत्तिः यथेदृशं नास्ति यद्गोधूमा गोधूमेभ्य एवोत्पद्यन्ते किन्तु वंशादिकेभ्योऽप्युत्पद्यन्ते इत्यादि । इत्थं पुण्यपापे वर्जयित्वा अजीवादिषट्तत्त्वानां द्वादश द्वादश भेदैर्वादिनः स्युः एवं सर्वे चतुरशीतिर्भेदाः अक्रियावादिनाम् । ये आत्मानं न मन्यन्ते ते पुण्यपापे तत्त्वमध्ये पृथक् न गणयन्ति । तथा सप्तषष्टिरज्ञानिनः, ते जीवादिनवतत्त्वानां सोत्पत्तीनां भेदैः स्युः । यथैके आहुः जीवोऽस्ति इत्थं कोऽपि वेत्ति कोऽपि न वेत्तीत्यर्थः, किं कार्यं तेन ज्ञातेन १ । के आहुः नास्ति जीव इति को वेत्ति किं कार्यं तेन ज्ञातेन २ । के आहुः जीवोऽस्ति नास्ति च देशकालविशेषेण पुनरित्थं को जानातीत्यादि । के आहुः जीवोऽवक्तव्यः, इत्थं को वेत्ति किं कार्यं तेन ज्ञातेन ४ । के आहुः जीवः सदवक्तव्यः, इत्थं को वेत्ति किं वा तेन ज्ञातेन ५ । के आहुः जीवोऽसदवक्तव्यः, इत्थं को वेत्ति किं वा तेन ज्ञातेन ६ । के आहुः जीवः सदसदवक्तव्यः, इत्थं को वेत्ति किं वा तेन ज्ञातेन ७ । इत्थं सप्त वादिनो जीवे जाताः । इत्थं के आहुः अजीवोऽस्ति को वेत्ति किं वा तेन ज्ञातेन इत्यादि सप्त वादिभेदाः । इत्थं शेषेषु तत्त्वेषु ज्ञेयाः, एवं सर्वे त्रिषष्टिर्भेदाः । तथा के आहुः उत्पत्तिरस्ति को वेत्ति किं वा तया ज्ञातया १ । के आहुः नास्ति भावोत्पत्तिः को० २ । के आहुः अस्ति नास्ति भावोत्पत्तिः को० ३ । केप्याहुः उत्पत्तिरवाच्या को० ४, इत्थं ज्ञानं मन्यन्ते । एवं चतुर्भिरुत्पत्तिभेदवादिभिः

त्रीणि शतानि त्रिषष्ट्यधिकानि पाखण्डिनः ।

सह सप्तषष्टिरज्ञानवादिनो भेदाः स्युः । अत्रोत्पत्तिवादिनश्चतुर्भिरेव भेदैः स्युः, सदवक्तव्यादिभेदत्रिकं न स्यात् । तथा
द्वात्रिंशद्विनयवादिनो वैनयिकाः स्युः । तत्रैके आहुः देवानां मनसा विनयः क्रियते १ केप्याहुः वाचा क्रियते २ केऽपि
कायेन ३ केऽपि दानेन क्रियते ४, देवविषये चत्वारो विनयवादिभेदाः । इत्थं राज २ यति ३ ज्ञाति ४ वृद्ध ५
अनास्तिक ६ पितृ ७ मातृ ८ विषये मनोविनयादिकचतुर्भेदे विनयवादिनो भवन्ति, एतानष्टौ चतुर्गुणान् कृत्वा द्वात्रिंश-
द्वैनयिकभेदाः स्युः । एवं १८०-८४-६७-३२ । एवं सर्वे एकान्त(एकत्र)स्थापने त्रिशतानि त्रिषष्टिश्च पाखण्डिनः । यतः
यत्क्रियावादिनः आहुः अस्त्येव जीवः तन्मिथ्या, यद्येकान्तेन जीवः सन्नेवास्ति तर्हि यथा जीवो जीवत्वेऽस्ति तथा
जीवोऽजीवत्वे स्यात् पुनरित्थं न स्यात् । अतो जीवादिकं सदसद्वाच्यं स्वरूपेऽस्ति पररूपे नास्तीत्यर्थः । यदेकान्तेन
नित्यमनित्यं च स्थाप्यते तन्मिथ्यात्वम् । यदि जीव एकान्तेन नित्य एव स्यात् तर्हि कथमुत्पद्यते विनश्यति च ।
यद्यनित्य एव स्यात् तर्हि को बध्यते को मुच्यते ? तपःक्रियास्मृत्यादिव्यवहारोच्छेदश्च । परं जीवो द्रव्यत्वेन नित्यः
देवनरादिपर्यायपरावर्त्तनेनानित्यश्च स्यात् । इत्थमजीवादिकमपि ज्ञेयम् । यज्जीवोऽस्ति पुनः कालतो नित्यः स्वभावतो
नित्य इत्याद्येकान्तस्थापनेन पाखण्डिनो भवन्ति । परं जीवाजीवादिकं स्वभावादेव नित्यानित्यमस्ति । तत्र कालभवितव्य-
तादिसहकारिहेतवो ज्ञेयाः । तथा जीवो नित्यानित्यः सत्त्वान्यथानुपपत्तेः व्योमवत् । तथा वस्तु समुदायेनैव स्यात् सहका-
रिनापेक्षत्वात् पटवत् । तथाऽक्रियावादिनो जीवादिकं सदपि नास्तीति वदन्ति ततः पाखण्डिनः । अज्ञानिनो ज्ञानममन्वानाः

१ अपरः इति हारि० वृत्तौ पृ. ८१७।२

पाखण्डिनः । तथास्त्यनन्तज्ञानं तारतम्यवत्त्वात् परिमाणवत् यथा तद्व्योम्नि स्थितं तच्चेदं जिनैः (प्रोक्तं) । वैनयिकाः पात्रापात्रविचारणानिरपेक्षत्वेन विनयं मन्यमानाः पाखण्डिनः । तथा विनयः पात्रे कार्यः सत्फलत्वात् दृष्टिवत् । तत्र सम्यक्त्ववतैकान्तो न स्थाप्यः किन्तु सर्वं द्रव्यतो नित्यं पर्यायतोऽनित्य च, पुनः स्वरूपेणास्ति पररूपेण नास्ति । इत्थं नित्यानित्यं अस्तिनास्तिरूपं मान्यम् । ज्ञानवादी केवलं ज्ञानमेव स्थापयति, दर्शनवादी तु दर्शनं, चारित्रवादी चारित्रमेव । परमेकेन ज्ञानादिना मुक्तिर्न स्यात् । ज्ञानदर्शनचारित्रेषु मिलितेषु मुक्तिः स्यादिति ज्ञेयम् ४ । परपाखण्डिनां संस्तवः परिचयो गृहागमैकत्रवासभोजनादिरूपः ५ । तत्र शङ्कायां दृष्टान्तः । द्वौ सुतौ लेखशालायाः शीताशनायायातः, मात्रा पेयायां माषाः क्षिप्ताः । एको मक्षिकाधिया पिबति, तस्य वल्गुलीव्याधिरुत्पन्नो मृतश्च । अन्यो मन्माता मक्षिका न दत्ते इति (पिबति) जीवितः । काङ्क्षायां राजामात्यश्चाश्वहृतौ वने क्षिप्तौ । क्षुधा फलान्यत्तः । वलमानो राजा दध्यौ । लड्डुकादि बहुघ्नि । तत एतेन सूपकारोऽभाणि, यल्लोके ख्यातं तद्द्रव्यं राध्यम्, ततो राद्धे सर्वं इदं भव्यमिदं भव्यमिति बहु बुभुजे शूलेन मृतः । मन्त्री यत्तद् भुञ्जानो भोगभाग् जातः २ । श्राद्धो नन्दीश्वरद्वीपगमनं दिव्यगन्धो देवसंघर्षेण जातः । मित्रप्रश्नं विद्यादानं, तया विद्यया कृष्णचतुर्दश्यां श्मशाने चतुःपादशिक्यकेनाधः खदिराङ्गारेषु अष्टशतं वारान् जपित्वा पादपादछेदने नभ उत्पातः । श्राद्धेन मित्राय दत्ता । स साधनाय शिक्यारूढः संशयानश्चौरेण लोप्त्रयुतेन राजनरमारणभयाद्धादित इत्यादि लोप्त्रं दत्त्वा, विद्यात्ता चौरः शिक्यारूढः साहसाज्ञापादनु छेदे उत्पतितः । साधकेन सेत्स्यति नवेति विचिकित्सया दत्ता । चौरेण श्राद्धेनास्य दत्तेति ततः शुद्धेति निश्चलचित्तेनात्ता । ततश्चौरेण राजनृभ्यः साधकोऽश्मपातान्मोचितः तस्यापि विद्या

मिद्धा द्वावपि श्राद्धौ जातौ ३ । यद्वा विदां साधूनां जुगुप्सा विज्जुगुप्सा विदुगुंछा, साधवोऽस्नानात् प्रस्वेदजलक्लिन्ना मलमलिनत्वाद् दुर्गन्धाः स्युः । तत्र एकः श्राद्धः प्रत्यन्ते वसति । तत्पुत्रीविवाहे साधूनागतान् पित्रुक्त्या प्रतिलम्भयन्ती मलगन्धं ज्ञात्वाऽर्हता भव्यो धर्म्म उक्तः, परं शुद्धजलेन स्नाने को दोषः ? इति दध्यौ । तच्चानालोच्य मृत्वा राजगृहे वेश्यासुता जाता दुर्गन्धत्वात् त्यक्ता श्रेणिकेन दृष्टेत्यादि पृच्छा । सा तदैव तत्कर्म्म वेदित्वा गन्धहीना आभीर्या वर्द्धिता यावत् १२ वर्षाणि श्रेणिकपत्नी जाता । पृष्ठ्यारोहेण श्रेणिकेनोपालक्षि ततो दीक्षिता । अन्ये आहुः वणिकुले आयाता परं गर्भस्थायां अरतिहेतुत्वात्पातनानि कृतानि । ततो जाता त्यक्ता । अष्टवर्षाणि राज्ञीत्वं । परपाखण्डप्रशंसायां चन्द्रगुप्तेन भिक्षुवृत्तौ हृतायां भिक्षवस्तस्य धर्म्मं जगदुः, राजाऽतुष्यत् चाणिक्यं पश्यन् तदप्रशंसातो न दत्ते । भार्याप्रेरितश्चाणाक्यः सुभाषितमिति जगौ । राज्ञा साऽन्या च वृत्तिर्ददे । द्वितीयेऽह्नि चाणिक्येन राजोक्तः किं त्वया दत्तं ? सोऽवक् युष्मत्प्रशंसातः । सोऽवक् (न)मयेत्युक्तं । अहो सर्वारम्भिणो रञ्जनाय कुर्युरिति । ततो राजाऽस्थात् ततो न शंस्याः । संस्तवे प्रागुक्तः सौराष्ट्रः श्राद्ध एव ५ । एभिरतीचारै रहितः सम्यक्त्वोऽणुव्रताद्यर्हः स्यात्तदाह ॥

थूलगपाणाइवायं समणोवासओ पच्चक्खाइ, से पाणाइवाए दुविहे पन्नत्ते, तंजहा संकप्पओ अ आरंभओ अ, तत्थ समणोवासओ संकप्पओ जावज्जीवाए पच्चक्खाइ, नो आरंभओ, थूलगपाणाइवायवेरमणस्स समणोवासएणं इमे पंच अइयारा जाणियव्वा, तंजहा—बंधे वहे छविच्छेए अइभारे भत्तपाणवुच्छेए १ । (सूत्रम्) ॥

स्थूलः सर्वलोकसिद्धो द्वीन्द्रियादिः, तस्य प्राणा इन्द्रियाद्याः, तत्र पञ्चेन्द्रियाणि ५ उच्छ्वासनिःश्वासः ६ मनोबलं ७ वाग्बलं ८ कायबलं ९ आयुः १० प्राणास्तेषां मध्ये एकेन्द्रियेषु स्पर्शेन्द्रियोच्छ्वासायुःकायबलाख्याश्चत्वारः प्राणाः, द्वित्रि-चतुरिन्द्रियेषु क्रमात् षट्सप्ताष्टप्राणाः रसनेन्द्रियाद्येकैकेन्द्रियाधिक्यस्य वाग्बलस्य चाधिक्यात्। असंज्ञिपञ्चेन्द्रियेषु मनोबल-हीनत्वान्नव, संज्ञिषु समनस्त्वाद्दश प्राणाः, प्राणानां अतिपातो विनाशस्तं श्रावकः प्रत्याख्याति त्यजति। प्राणातिपातो द्विविधः संकल्पज आरम्भजश्च। संकल्प्य मनसा ज्ञात्वा हिंसा संकल्पज। आरम्भे हलखननादौ जाता हिंसाऽऽरम्भजः। तत्रैकेन्द्रियाणां संकल्प्यैवारम्भः स्याच्चेनैकेन्द्रियारम्भं न प्रत्याख्याति। त्रसहिंसा तु संकल्पतो निरारम्भो यावज्जीवं प्रत्याख्याति। परं सापराधसापेक्षान् मुक्त्वा। एवं सपादविशोपकोऽनर्थदण्डत्यागिगृहिणः स्यात्। अस्यातीचाराः—बन्धो रज्वादिना, वधो दण्डादिना, तत्र गाढं बन्धवधौ अतिचाराय, छविर्देहस्तस्य छेदः पाटनं अङ्कनकर्णकल्पनादिः, अतिभारः अतिभारारोपः, भक्तपानव्यवच्छेदः स्पष्टः ५। एतान् समाचरन् प्रथमव्रतं अतिचरति लोकनिन्द्यश्च स्यात्। तत्र श्राद्धस्य ते पशवो घटन्ते ये बन्धं विना अल्पेन वा तिष्ठन्ति। कारणे दययाश्वबालादीनां बन्धवधादिषु रोगिलङ्घनादौ च स्वल्पो दोषः। एषां दोषाणां त्यागेन भोगान्तरायादि जयति। तथा हिंसायां दोषदृष्टान्तः कोङ्कणस्य, यथा तेन प्रियामृतौ नवपत्न्या लाभायेषुणा सुतो हतः। हिंसानिवृत्तौ गुणाः साप्तपदिकः सामायिकाध्ययने व्याख्यातः। 'सत्तवईए कुंकणगदारए' इत्यादौ। तथाऽवन्त्यां श्रावकसुतो मालवकैर्हृतः सूपकृता क्रीतो जीवान् जहि। सोऽहन(घ्न)न् सूपकृत्कुट्टितः। तारं रुदन् नृपपृष्टो यथास्थमूचे। राज्ञोऽपि किं न हंसीत्युक्तेऽप्यघ्नन् स इभधर्षणाभयं दर्शितस्तथाप्यघ्नन् स्वाङ्गरक्षो विहितः कालेन स्थविरान्ते

टीश्रितः। पाटलिपुत्रे जितशत्रुराज्ञः क्षेममन्त्री स नृपमान्यो दयी धर्म्मी राज्ञो हित इत्यन्यराड्भिस्तदुदयासहैः क्षेमजनै-र्वंशार्थैः परावर्णाभिर्मरंजीतं राजा क्षेमोपरि कोपितः। क्षेमो निगृहीतोऽवगहं सर्वसत्त्वानां क्षेमङ्करः किं पुना राज्ञः? तथापि राज्ञा वध्य आज्ञप्तः। तत्र राज्ञोऽशोकवनिकायामगाधा सोत्पलपद्मा पुष्करणी परं मकरग्राहैर्दुरवगाहा स्यात्। कोऽपि तत्पद्मान्युच्छेत्तुं नालम्। यो वध्यः स्यात् स पद्मानयने प्रेर्यते। क्षेमस्तत्र नीतो 'नमुत्थुणं अरिहंताणं' भणित्वा यद्य-ह निर्मन्तुस्तदा सुरी साम्निध्यं करोत्विति साकारं भक्तं प्रत्याख्यात् सुरीसान्निध्यान्मकरपृष्टिस्थो बहुपद्मान्यानीयोत्तीर्णः। राज्ञा हृष्टेन क्षमयित्वोपगूढः। वैरिणो निगृह्योक्तः कं वरं ददे? गाढाग्रहोऽपि तेन दीक्षावरोऽयाचि आत्ता च। एवमिह-लोकगुणाः परत्र सुदेवनृदीर्घायुस्त्वादि ज्ञेयम्।

थूलगमुसावायं समणोवासओ पच्चक्खाइ, से य मुसावाए पंचविहे पन्नत्ते, तंजहा—कन्नालीए गवालीए भोमालिए नासावहारे कूडसक्खिज्जे। थूलगमुसावायवेरमणस्स समणोवासएणं इमे पंच अइयारा जाणियव्वा, तंजहा-सहस्सब्भक्खाणे रहस्सब्भक्खाणे सदारमंतभेए मोसुवएसे कूडलेहकरणे २॥ (सूत्रम्)

मृषावादो द्विधा, स्थूलः सूक्ष्मश्च। तत्र स्थूलः स्वान्ययोर्महाक्लेशहेतुः, सोऽर्थादनर्थाद्वा न वाच्यः। स्थूलश्चासौ मृषावादश्चेति समासः, तत्र स्थूलः कन्यालीकादिः, कन्याग्रहणाद्दोपलघुप्रौढकुमारवराणामपि कूटं कथनं कन्यालीकं १, तत्र

---

१ 'मकरपृष्टिस्थः पद्मानि लात्वोत्तीर्णः, राज्ञा त्रिः क्षामितः विपक्षनिग्रहं कृत्वोक्तः किं ते वरं ददे? स निरुध्यमानोऽपि प्राव्राजीत्' इति पाठोऽन्यप्रतौ।

कन्या कदापि द्वेषात् कूपादौ पतेत् । गोरुपलक्षणात् पशूनां सदुग्धत्वादिमृषावदनं गवालीकं २ । भूम्यलीकं स्वां भुवं परां वक्तीत्यादि, ऊषरां भव्यां वक्तीत्यादि, बहुधान्यामल्पधान्यामित्यादि ३ । न्यासो द्रव्यस्थापना तदपलापो न्यासालीकं ४ । कूटसाक्षिः स्पष्टा ५ । एतैरन्तरायाणां बन्धः स्यात् । सूक्ष्मं अलीकं कूटकयादेरितरत् । सहसाऽभ्याख्यानं त्वं चौर इत्यादि १ । रहस्याभ्याख्यानं कस्याप्या (कांश्चिदा) लोचयतो वक्तीदं अयुक्तं विमृशन्तः सन्तीत्यादिकथनं २ । स्वदारेत्युपलक्षणात्स्वकलत्रमित्राद्युक्तस्य मन्त्रस्येति रहस्यस्य भेदोऽन्येभ्यः कथनं ३ । मृषोपदेशः कूटवार्त्तादिकृतिः कूटोपदेशश्च ४ । कूटलेखः कूटलेखस्य लिखनं कूटलेखलिखनम् । न्यासापहारे पुरोधा दृष्टान्तो नमस्कारे । मृषोपदेशे परिव्राट् नरमूचे किं क्लिश्यसेऽहं ते निषण्णस्य धनमर्जयामि यथा याहि व्याकुलं वणिजं मार्गयोच्छिन्नं जनदानग्रहणाकुलत्वे कालान्तरे पुनः पुनः मार्गयेः । मां साक्षिणं कुर्याः । स तथायाचत तेनादत्ते गाढमवक् मम द्रव्यं न दत्से ? इयन्मानं च । एवं वारत्रयं याचितोऽददत्करणं नीतस्तेन परिव्राजा साक्षिणा जितोऽधनायादात् । मृषाऽभाषणे गुणः । कोङ्कणः श्राद्धोऽत्र उक्तः । अश्वं नश्यन्तं हन्धि ? तेन हतो मृतश्च । अश्वेशा करणं नीतः पृष्टः कस्ते साक्षी ? अश्वेशाऽस्य सुतो मे साक्षीति पुत्रः पृष्टोऽवक् सत्यमेतत्तुष्टं करणं तमपूजयत् । लोकोऽशंसत पितापि मुक्तः । अभ्याख्यानादौ स्वान्यमृत्याद्या दोषाः स्युः हास्यादिनाप्यनृतं न वाच्यम् । मृषातो मुखविगन्धत्वादिदोषः ५ ।

थूलगअदत्तादाणं समणोवासओ पच्चक्खाइ, से अदिन्नादाणे दुविहे पन्नते, तंजहा—सचित्तादत्तादाणे अचित्तादत्तादाणे अ । थूलादत्तादाणवेरमणस्स समणोवासएणं इमे पंच अइयारा जाणियव्वा,

तंजहा-तेनाहडे तक्करपओगे विरुद्धरज्जाइक्कमणे कूडतुलकूडमाणे तप्पडिरूवगववहारे ३ ॥ (सूत्रम्)

अदत्तस्यादानं ग्रहणं द्विधा स्थूलं सूक्ष्मं च । तत्र स्थूलं चौर्यं गृहारण्यमार्गक्षेत्रादिषु न कार्यम् । सूक्ष्मं वणिग्भृत्यादानम् । स्थूलसूक्ष्मे अपि द्विधा सचित्तविषये अचित्तविषये च । तत्र सचित्तं सजीवं वस्तु, अचित्तं निर्जीवं, अन्यवस्तुनो धनिकानुज्ञया-दानेऽदत्तादानमेव । स्तेनाश्चौरास्तैराहृतं आनीतं स्तेनाहृतम् । चौरैर्विक्रयायानीतं ज्ञात्वा लातोऽतिचारः । श्राद्धेन हि चौरस्थानेषु न वस्तव्यं न प्रविश्यं हिंसोपकारि न देयम् १ । तस्करप्रयोगः, स्तेनानां शम्बलादिसाहाय्यं २ । विरुद्धस्य नृपस्य राज्यं विरुद्धराज्यं तत्रातिक्रमोऽपगमनं लोभात् वैरिराज्ये विक्रयार्थं गतिरित्यर्थः ३ । कूटतुलाकूटमानकरणं तत्रोनं ददतोऽधिकं न लातो दोषः ४ । तत्प्रतिरूपकमिति अन्यं सव्यं वस्तु दर्शयित्वाऽन्यमर्पयतीति तत्प्रतिरूपकव्यवहारः ५ । तत्र घृतादौ तैलादियोगः व्रीह्यादिषु लञ्जीक्षेप इत्यादि च तत्प्रतिरूपकं उच्यते । अत्र दोषा राजदण्डाद्याः । द्यूतिनः श्राद्धयुताः स्थविरी-प्रकरणे जनैः सह गताः । जने गते तैर्गृहं मुष्टं वृद्धा मायया तेषां क्रमयोः प्रत्येकं वारणाय पतन्ती मोरपिच्छेन तत्पादान-निक्षयत् । प्रातर्नृपायोक्तं राज्ञा कथं ते ज्ञेया इत्युक्ते पादाङ्कितास्तयोक्ताः । पुरागमे अङ्केन ते उपलक्षिताः सर्वे धृताः एकः श्राद्धोऽवग् न हराम्यन्यस्वं नाङ्कितश्च । स्तेनैरथोचे एषोऽमन्तुः मुक्तः । अन्ये शिक्षिताः । एवं श्राद्धेन द्यूतगोष्ठ्यामपि न प्रवेश्यं चेत्प्रविशति तदापि हिंसादि न दत्ते न स्तेनमन्त्रे तिष्ठति परभवे धनहीनछिन्नाङ्गादिदोषाः ॥ ३ ॥

परदारगमणं समणोवासओ पच्चक्खाति सदारसंतोसं वा पडिवज्जइ से य परदारगमणे दुविहे पन्नत्ते, तंजहा-ओरालियपरदारगमणे वेउव्वियपरदारगमणे सदारसंतोसस्स समणोवासएणं इमे पंच अइयारा

जाणियव्वा, तंजहा–इत्तरियपरिग्गहियागमणे अपरिगहियागमणे अणंगकीडा परवीवाहकरणे कामभोगतिव्वाभिलासे ४ ॥ (सूत्रम्)

परदाराऽपरकलत्रं तत्र गमनं आसेवनार्थम् । ततः श्राद्धः प्रत्याख्याति स्वदारेषु सन्तोषं वा प्रपद्यतेऽयं भावः परदारगमननिषेधको यासु परदारशब्दः प्रवर्त्तते तासां नियमं कुर्यात् । स्वदारसंतुष्टस्तु एकानेकस्वदारान् मुक्त्वा सर्वासां निषेधकः । तत्र औदारिकपरदारागमनम् नृतिर्यक्स्त्रीगमनं । वैक्रियपरदारागमनं देवाङ्गनागमनम् । इत्वरपरिगृहीता कालशब्दलोपादित्वरकालपरिगृहीता भाटी(टि)प्रदानेन कियन्तमपि कालं दिनमासादिकं स्ववशीकृता तस्यां गमनम् १ । अपरिगृहीता वेश्याऽन्यसत्कागृहीतभाटिः कुलस्त्रीर्वाऽनाथा तस्यां गमनम् २ । अनङ्गानि मैथुनाङ्गं विनाऽन्यानि कुचकक्षोरुमुखादीनि तेषु क्रीडनमनङ्गक्रीडाऽथवाऽनङ्गक्रीडा कृतरतस्यापि स्वलिङ्गेन तुल्यैर्दारुलेप्यमृत्तिकाचर्मादिघटितगुह्यैः फलेन वा योषिदुपस्थासेवा ३ । स्वापत्यानां विनाऽन्यापत्यानां परेषां विवाहकरणं कन्याफलेच्छया स्नेहेन वा, यतः केऽपि श्राद्धाः स्वापत्यानामपि विवाहं न योजयन्ति। कन्या पत्या मिलतु षण्डो गवा मिलत्वित्यादि भाषापि न कल्प्या ४ । कामाः शब्दरूपगन्धा भोगाः रसस्पर्शास्तेषु तीव्राभिलाषोऽत्यन्ताध्यवसायस्तस्माच्चेदं करोति । समाप्तरतोऽपि योषिन्मुखोपस्थकर्णकक्षान्तरेष्वतृप्ततया लिङ्गं क्षिप्त्वा मृत इवास्ते महतीं वेलां दन्तनखादिभिर्वा मदनमुत्तेजयति वाजीकरणं वोपयुङ्क्ते । योषिल्लिङ्गं वा मृद्नाति । इहाद्यौ अतिचारौ स्वदारसन्तुष्टस्य स्यातां न तु परदारत्यागिनः । शेषा द्वयोरपि । तुर्याणुव्रतपालिनो मातृगमनादयोऽपि दोषाः स्युः। यथा गिरिनगरस्त्रियश्चौरहृताः पारसदेशे विक्रीता वेश्या जाताः, तासां पुत्रा लघवोऽभूवन् वृद्धा मित्रीभूतास्तत्र व्यव-

मार्यं गताः। तत्र देशे श्रीमन्वित्वा माटीं(टिं) दत्त्वा स्थिताः, द्वाभ्यामकृत्यं कृतम्। एकः श्राद्धत्वान्न चक्रे। पृष्टवान् स्त्रीदेशं यावद् ज्ञाता माता। द्वाभ्यां मृतिर्दध्यौ। पारिणामिकीबुद्ध्या त्रयः साधुपार्श्वे प्राव्रजन्। तथा क्वापि भर्त्ता मगर्भपत्न्यां गतः सुता जाता। अन्यपुरे दत्ता संवलमान आयान् सुतापुरे वर्षास्थितः सुतया सह संगतः, वर्षातिक्रमे स्वपुरं गतः। सुतामानायितवान्, सुता तं दृष्ट्वा लज्जिता निवृत्य मृताऽन्यः प्राव्राजीत्। पुनरविरत्या दोषः। एका वेश्या प्रसूता युग्मम्। ततो मा स्नोक्तां माटिं लभे इति द्वे अपत्ये सुतसुतारूपे पुरः पूर्वपश्चिमद्वारयोस्तत्याज। तदा तत्र वणिग्भ्यां मिथो मित्राभ्यां ते द्वे गृहीते, तत्प्रतिचारकदास्यौ गते स्थानं, ततस्ते प्रौढे जाते मिथो विवाहिते। तावता पुत्रो वेश्यायां लग्नः प्रियां नेहते। परं मा माता तेन न ज्ञाता तस्याः पुत्रोऽभूत् वधूस्तु वैराग्यात् प्रव्रज्योत्पन्नावधिर्भिक्षां भ्रमन्ती गता गणिकागृहम्। तत्स्वरूपज्ञापनाय वेश्यापुत्रं गृहीत्वा परावर्त्तयत् जगाद च भ्राता पुत्रो देवरो मम त्वम्। यस्त्वत्पिता स भर्त्ता पिता भ्राता, या ते माता सा मे माता श्वश्रूः सपत्नीति। ततः स भर्त्ता सम्बुद्धो दीक्षितः। यद्वा कोऽपि सोमिलो वणिग्, तत्रान्यवणिग्गृहं प्रतिवेश्म। तत्र सोमिलस्तस्य सौधे काष्ठेनारुह्य तत्स्नुषया सह वसति। एवं काले याति अन्यदा प्रातिवेश्मिकेन जज्ञे। रूढं घृष्टम्। नूनं काष्ठेन कोऽप्यारोहति ततश्चटन् धृष्ट्वा वर्चःकूपे क्षिप्तो मलं भक्षयति मूत्रं पिबति। मेघवृष्टे जलभृताद्वर्चःकूपाज्जलमार्गेण क्षालेन स्वं गृहं गतः विगन्धो वैद्यैः पूर्वरूपः कृतः ततः पुनः पुनः तामैवैच्छत्। एवं त्रीन् वारान्, तुर्यवारायां मङ्कलबद्धो वर्चःकूपे क्षिप्तो मृतः। तथाऽन्येऽपि दोषाः। यथा क्वापि पत्यौ वाणिज्ये गते प्रियाऽन्येन लग्ना, पतिः कतिचिर्द्वर्षैरायान् प्रियास्वरूपज्ञप्त्यै भिक्षुकवेषेण गृहं गतस्तावत् सा भक्ष्यभक्ष्याणि कृत्वोपपतिं

यान्ती तं भिक्षुकं भव्याहारैर्लोभयित्वा तेन भारं (वाहयित्वा) वने जारान्तिकेऽनयत् । स तत् प्रियास्वरूपं ज्ञात्वाऽज्ञापयन् महर्द्ध्या गृहमायातो विनयात्पत्न्या सत्कृतो रात्रौ वनगमनवृत्तान्तमपृच्छत् । सा भिक्षुकत्वेऽसाविति निश्चित्य लज्जिता मृता सोऽदीक्षिष्ट । तथा माता लोला सुतः कुगोष्ठीमिलितः । सुतप्रिया पतिमूचे माता भ्रमन्त्यस्ति । सोऽश्रद्दधानो मात्रा गोष्ठ्या सह निशि देवकुले तमसि रेमे । मातृपुत्रयोर्वस्त्रविपर्यासे प्रिययोक्तम् । कस्याः स्त्रिय आच्छादनवस्त्रं त्वयात्तम् ? ततो मातुर्ज्ञात्वा नष्टो दीक्षितः । भवान्तरे दोषाः क्लैब्यकुरूपवियोगाद्याः, गुणा इह यथा आनन्दपुरे द्विजो मूलेश्वर उपवासांश्चक्रे। अहं भक्तं ददे पात्राय देवेन वारद्वयं उक्तम् । कच्छे आभीराभीर्यौ श्राद्धे तद्दानेऽक्षयं फलम् । स तत्र गत्वा ताभ्यां भक्तं दक्षिणां च दत्त्वाऽप्राक्षीत् । किं युवयोस्तपः ? येन सुराच्र्यता, ताभ्यामूचे एकान्तरं ब्रह्मव्रतमात्तम् । विवाहे द्वयोरन्योन्याहब्रह्मणो (व्रतं) जातम् । ब्रह्मण्येव वार्द्धक्यं जातम् । कुमारत्वे द्विजः सुबुद्धोऽर्हद्धर्म्मं ललौ प्रेत्य स्वर्गसुनृत्वादि ॥ ४ ॥

अपरिमियपरिग्गहं समणोवासओ इच्छापरिमाणं उवसम्पज्जइ, से परिग्गहे दुविहे पन्नत्ते, तंजहा–सचित्तपरिग्गहे अचित्तपरिग्गहे य, इच्छापरिमाणस्स समणोवासएणं इमे पंच अइयारा जाणियव्वा, तंजहा–खित्तवत्थुपमाणाइक्कमे हिरन्नसुवन्नपमाणाइक्कमे धणधन्नपमाणाइक्कमे दुपयचउप्पयपमाणाइक्कमे कुवियपमाणाइक्कमे ५ ॥ (सूत्रम्)

अपरिमितोऽपरिमाणः स चासौ परिग्रहोऽपरिमितपरिग्रहः तं श्राद्धः प्रत्याख्याति । इच्छापरिमाणं सचित्तादिगोचरेच्छापरिमाणम् । क्षेत्रवास्तुप्रमाणातिक्रमः । तत्र सस्योत्पत्तिभूः क्षेत्रं क्षीयतेऽत्र बीजमिति व्युत्पत्तेः । तच्च सेतुकेतुभेदाद् द्विधा,

तत्र सेतुक्षेत्रमरघट्टादिसेक्यं, केतुक्षेत्रं त्वाकाशपतितोदकनिष्पाद्यम् । उप्यतेऽत्रेति वास्तु गृहम् । तत्त्रिधा खातं उत्सृतं खातोत्सृतं
च । तत्र खातं भूमिगृहादि । उत्सृतं प्रासादादि । खातोत्सृतं भूमिगृहोर्ध्वं प्रासादः । एषां क्षेत्रवास्तूनां प्रमाणातिक्रमः प्रत्या-
ख्यानकालगृहीतप्रमाणोल्लङ्घनम् १ । हिरण्यसुवर्णप्रमाणातिक्रमः तत्र हिरण्यं रजतमघटितं घटितं च द्रम्मादि, एवं सुवर्णमपि ।
तयोः प्रमाणातिक्रमः मार्यादीनामायत्तताकरणेन २ । धनधान्ययोर्लभ्ययोः स्थाप्यकरणेन समर्घयोर्वा सत्यङ्कारदानेन । वर्षावधिपूर्णौ अग्रेतनं मूढकेषु वा व्यापृतेषु ग्रहीष्ये इति चिन्तया सुवर्णग्रहणाद्यपि ज्ञेयम् । धनं गणिमं पूगादि १ धरिमं मञ्जिष्ठादि
२ मेयं घृतादि ३ परिच्छेद्यं च मण्यादि ४ । धान्यं स्पष्टं ३ । द्विपदा दास्याद्या मोराद्याश्च चतुष्पदाः ४ । कुप्यमासनशयन-
भोजनपरिवेषणस्नानाद्युपभोगहेतुवस्तुजातं वस्त्राणि च तत्प्रमाणातिक्रमः । यथा प्रागन्यद्रम्मैः कुप्यं चिन्तितं स्यात्ततो
धनवृद्धौ द्रम्मपरावर्त्तं कुर्यात् स्थालादीनां वाऽन्यनामतां कुर्यात् ५ । एतान्यणुव्रतानि ॥ ५ ॥

अणुव्रतानां पालनाय गुणकारीणि गुणव्रतान्युच्यन्ते, यथा—

दिसिवए तिविहे पन्नत्ते उड्ढदिसिवए अहोदिसिवए तिरियदिसिवए, दिसिवयस्स समणोवासएणं
इमे पञ्च अइयारा जाणियव्वा, तंजहा—उड्ढदिसिपमाणाइक्कमे अहोदिसिपमाणाइक्कमे तिरियदिसिपमा-
णाइक्कमे खित्तवुड्ढी सइअंतरद्धा ६ ॥ (सूत्रम्)

व्रतं नियम उच्यते, ऊर्ध्वदिग्व्रतं एतावती दिगूर्ध्वं पर्वताद्यारोहणादवगाहनीया न परत इत्येवम्भूतम् १ । अधोदिग्व्रतं
एतावती दिगधः वाप्याद्यवतरणादवगाह्येति २ । तिर्यग्दिग्व्रतं इयती दिग् पूर्वेणावगाह्या इयती दक्षिणेनेत्यादि न परत इति

३। अस्मिन् व्रते आत्ते तिर्यग्दिग्वहिस्थजन्तूनां हिंसा न स्यादिति गुणः। एषां नियमानां प्रमाणातिक्रमो नियमितभुव ऊर्ध्वं चलने। तत्र ऊर्ध्वं स्वमानगिर्यारूढो द्रुफलानि पक्ष्यात्तभूषादि स्वतः पतितं लाति न तु यत्नं कुर्यात्। क्षेत्रवृद्धिरित्येकतो योजनशतं नियमितं परतो दशयोजनानीति। तत्र कार्योत्पत्तौ विस्तीर्णदिशो योजनानि संकीर्णदिशि क्षिप्त्वाऽगात् ततः समं क्षेत्रं करोति ४। स्मृतेरन्तर्द्धानं भ्रंशः स्मृत्यन्तर्द्धानम्। यथा के मया नियमा आत्ताः सन्तीति स्मृतेरकृतिः। स्मृतिमूलं च नियमानुष्ठानं ततः स्मृतिभङ्गे नियमभङ्ग इत्यतिचारः ५। यद्वा सति लाभेऽन्तर्द्धानं स्वगोपनेन परेण देशान्तरगमनम्। वहुलोभे दोषः लोभनन्दिवत्। गुणे एकाकिनी स्त्री भर्त्तरि गते क्षुधिता रत्नानि विक्रीणती श्राद्धेन वहुमूल्यानि दृष्ट्वा अनात्तेषु परेण यथेच्छमात्तेषु पत्यावैते रत्नमूल्याधूचे स नृपायोचे कूटमूल्यकृदयमिति स राज्ञा हतः श्राद्धोऽपूजि। द्वितीयं गुणव्रतमाह–

उवभोगपरिभोगवए दुविहे पन्नत्ते, तंजहा–भोअणओ कम्मओ अ। भोअणओ समणोवासएणं इमे पञ्च अइयारा जाणियव्वा, तंजहा–सचित्ताहारे सचित्तपडिबद्धाहारे अप्पउलिओसहिभक्खणया दुप्पउलिओसहिभक्खणया तुच्छोसहिभक्खणया। कम्मओ णं समणोवासएणं इमाइं पन्नरस कम्मादाणाइं जाणियव्वाइं, तंजहा–इंगालकम्मे वणकम्मे साडीकम्मे भाडीकम्मे फोडीकम्मे दंतवाणिज्जे लक्खवाणिज्जे रसवाणिज्जे विसवाणिज्जे, केसवाणिज्जे जंतपीलणकम्मे निल्लंछणकम्मे दवग्गिदावणया सरदहतलायसोसणया असईपोसणया ७॥ (सूत्रम्)

उपशब्दः सकृदर्थेऽन्तर्भोगे च, तत उपभोग आहारादेः। परिशब्द आवृत्तौ पुनः पुनरर्थे बहिर्भोगे वा ततः परिभोगो वस्त्रादेः, द्वयोर्विषयं उपभोगपरिभोगव्रतम् । तत्र भोजनत उत्सर्गेण श्राद्धोऽपि निरवद्यप्रासुकभोजी अशक्तौ सचित्तवर्जको वा स्यात्, अपवादतोऽनन्तकायबहुबीजपृथ्वीकायतुच्छौषधितुच्छफलविवर्जकः स्यात् । अशनेऽनन्तकायं आर्द्रकमांसादि, पाने रसकं मद्यादि, खादिमे उदुम्बरादिफलादि, स्वादिमे मध्वादित्यजनम् । उपपरिभोगे 'उल्लणविहि दंतणविहि अब्भंगणवि० फलवि० तिल्लवि० उव्वलणवि० मज्जणवि० वत्थविलेवणभूसणपुप्फ(प्फ)धूवभोयणपिज्जखज्जगसूअनेहमाहुरसागाजेमणपाणिय-मुहवासइत्यादिनियमाश्चिन्त्याः। 'उल्लणं' क्लिन्नाङ्गरूक्षणवस्त्रं गन्धकाषायादि 'उव्वलणं' पीठिकादि, सूपो दालिः, जेमनं वटकादि, तत्रानाभोगादिना सचित्तादिभोगेऽतिचारः। अथ कर्म्मतः कर्म्म व्यापारस्तदाश्रित्य, असावद्यव्यापारेण मुख्यतो भाव्यं अशक्तौ महासावद्यत्यागः कार्यः।

तत्र भोजनतो भोजनमाश्रित्य सह चित्तेन जीवेन वर्त्तते इति सचित्तः स चासावाहारश्च सचित्ताहारः नियमाधिकस-चित्तादानं १। सचित्तेन प्रतिबद्ध आहारो यथा वृक्षप्रतिबद्धो गुन्दादि पक्वफलानि वा २। अपक्वौषधयश्च नखदलिक-कणिकाद्या अपरिणतास्तासां भक्षणताऽचित्तधिया ३। दुष्पक्वौषधयोऽर्द्धपक्वफलिकापृथुकशाकादिरूपाः ४। तुच्छौषधयो मुद्गफल्याद्या अमारास्तासां भक्षणेनाहारः, क्वापि राजाश्ववाहनिकां गतो नरं फलिका अदन्तं गच्छन् आयांश्च दृष्ट्वा अहोऽयमेयत्कालं खादने कियन्मध्ये सारमभूदिति परीक्षार्थं जनैस्तत्कुन्दमदारयत्दुग्धफेनमेवाद्राक्षीत्ततो येषां फलिकाकोमल-पृथुकादीनां भक्षणे घना विराधनाल्पा च तुष्टिः तत्तुच्छफलम् । तथा 'पुप्फफलेहिं रसेहि य बहुतसपाणेहिं अजयत्ताणेहिं ।

मज्जेहिं य मंसेहि य विरमेज्जा अत्तहियकामो ॥ १ ॥ जत्थत्थि सत्तपीला उवभोगो थोवओ य तहियं तु । कुज्जा नाइपसंगं सेसेसु वि सत्तिओ निउणं ' ॥ २ ॥ शेषेष्वपि श्राद्धाचीर्णेष्वप्यारम्भेष्वतिप्रसङ्गं न कुर्यात् ।

अथ कर्म्मतः, कर्म्मादानानीति अन्यारम्भेभ्यो बहुज्ञानावरणादिकर्म्मबन्धहेतुत्वादादानानि कर्म्मादानानि । अङ्गारकर्म्म अग्निज्वालनोत्थव्यापारो लाभार्थम् १ । वनकर्म्म वनस्पतिकायवृक्षदारुवंशकटादितृणादिफलपुष्पपत्रच्छेदविक्रयकणदलनाद्यारम्भो लाभार्थमिति सर्वत्र ज्ञेयं २ । शकटेन जीवनं शकटाङ्गविक्रयः शकटकर्म्म उपलक्षणाद्यानपात्राङ्गादिविक्रयश्च शकटकर्म्म ३ । भाटकार्थं शकटाश्वगवादिदानं भाटकेन वस्तुवहनं शकटादिना भाटककर्म्म ४ । हलखेटनभूस्फोटनाश्मघट्टनादिना वृत्तिः स्फोटकर्म्म ५ । आकरे दन्तकेशमुक्तानखादिजल्पनं तद्ग्रहणं दन्तवाणिज्यं ६ । लाक्षामनःशिलादिवाणिज्यं कृम्यादिघाताय ७ । म्रक्षणादितापनं मधुमद्यादिविक्रयो रसवाणिज्यं ८ । विषशस्त्रहलहरितालादिजन्तुघातकवस्तुविक्रयो विषवाणिज्यं ९ । द्विपदचतुष्पदविक्रयः केशवाणिज्यं केशशब्देन पञ्चेन्द्रिया ज्ञेयाः १० । अरघट्टकादिकरणं यन्त्रपीडनकर्म्म ११ । पशूनां शोभाद्यर्थं दाहवेधादिकृतिर्निर्लाञ्छनम् १२ । धान्याद्यर्थं दवदापनं १३ । सरोह्रदतटाकानां धान्याद्यर्थं वैरिसैन्यदुःखार्थं शोषणं सारणिवाहनं सरोह्रदतटाकशोषणता १४ । असती घोटकादिका तासां पोषणं घोटकाद्यर्थं एवं दास्यादिपोषः तथा गृहरक्षायै श्वादिपोषः क्रीडाद्यर्थं शुकादिपोषः एतदप्यसतीपोषशब्देन ज्ञेयं १५ । एवं पञ्चदशानां कथनादन्येषामप्येवंजातीयानां बहुसावद्यकर्म्मणां त्यागः कार्यः ॥ ७ ॥

अणत्थदंडे चउव्विहे पन्नत्ते, तंजहा—अवज्झाणायरिए पमत्तायरिए हिंसप्पयाणे पावकम्मोवएसे,

अणत्थदंडवेरमणस्स समणोवासएणं इमे पञ्च अइयारा जाणियव्वा, तंजहा-कंदप्पे कुक्कुइए मोहरिए
संजुत्ताहिगरणे उवभोगपरिभोगाइरेगे ८ ॥ (सूत्रम्)

अर्थः कार्यं गृहिणः क्षेत्रवास्तुधनधान्यदेहादिविषयम् । तस्मै आरम्भो भूतोपमर्दोऽर्थदण्डः । अनर्थोऽकार्यो(र्यं) भूतानि
दण्ड्यते हिनस्तीत्यनर्थदण्डः । यथा मत्तस्तरुं प्रहरति तत्स्थजन्तून् हन्ति इत्यादि । तत्र अपध्यानं दुर्ध्यानं वैरिघातकऋद्धि-
प्रार्थनादि तस्याचरितं आचरणं १ । प्रमादो मद्यादिस्तेन तस्य वाचरितं २ । हिंसाहेतुशस्त्राग्निविषादिदानं हिंसाप्रदानं ३ ।
पानयति दुर्गताविति पापकर्म्म तस्योपदेशो यथा कृष्यादि कुर्वित्यादि, अलं पासायखंभाणं इत्यादि च ४ । कन्दर्पो विषय-
रागात् प्रहासमिश्रं मोहोद्दीपकं नर्म, यतः श्राद्धोऽट्टहासं न कुर्यात् ईषद् हसेत् कार्ये सति १ । कौत्कुच्यमनेकधा मुखा-
क्षिपदप्रभृतिचेष्टापूर्विका हासादिजनिका भण्डक्रिया २ । मौखर्यं धार्ष्ट्यं प्रायमसत्यमसम्बद्धप्रलापित्वम् ३ । संयुक्ता-
धिकरणं मुशलोदूखलादिसंयोजनम् । संयुक्तं च तदधिकरणं चेति समासः ततः संयुक्तानि शकटादीनि न धार्याणि ४ ।
उपभोगपरिभोगयोग्यद्रव्याणामाधिक्यकरणम् । यतः श्राद्धः स्नानताम्बूलाद्यर्हवस्तूनि तावन्ति न लायाद्यावन्त्यन्योऽप्यादाय
प्रमादि विराधयति । पुष्पादीन् त्रसांश्च त्यजेत् ५ । निषिद्धानर्थदण्डस्यैतेऽतिचाराः ॥ ८ ॥ उक्तं तृतीयं गुणव्रतम् ।

अथ चत्वारि शिक्षाव्रतानि । शिक्षा नाम पुनः पुनरभ्यासः, यतः सामायिकदेशावकाशिकादीनि पुनः पुनः क्रियन्ते ।
सामाइअं नाम सावज्जजोगपरिवज्जणं निरवज्जजोगपडिसेवणं च । सिक्खा दुविहा गाहा उववायठिई
गई कसाया य । बंधंता वेयंता पडिवज्जाइक्कमे पंच ॥ १ ॥ सामाइअंमि उ कए समणो इव सावओ

हवइ जम्हा । एएण कारणेणं बहुसो सामाइयं कुज्जा ॥ २ ॥ सव्वं ति भाणिऊणं विरई खलु जस्स सव्विया नत्थि । सो सव्वविरइवाई चुक्कइ देसं च सव्वं च ॥ ३ ॥ सामाइयस्स समणोवासएणं पञ्च अइयारा जाणियव्वा, तंजहा–मणदुप्पणिहाणे वइदुप्पणिहाणे कायदुप्पणिहाणे सामाइयस्स सइअकरणया सामाइयस्स अणवट्ठियस्स करणया ९ ॥ (सूत्रम्)

सावद्यः सपापः योगो व्यापारः तस्य परिवर्जनं सावद्ययोगपरिवर्जनं कालावधिनेति, निरवद्ययोगानां निरवद्यव्यापाराणां परिसेवनं आसेवनं च । समो रागद्वेषवियुक्तो जन्तुस्तस्य आयो लाभः प्रतिक्षणं वर्द्धमानानां ज्ञानदर्शनचरणानां समायः । समाय एव कार्यमस्येति सामायिकं । तं सावएण कहं कायव्वं ? इह सावगो दुविहो इड्ढिपत्तो अणड्ढिपत्तो य, ऋद्धिप्राप्तः अनृद्धि(प्राप्त)श्चेत्यर्थः । जो सो अणड्ढिपत्तो सो चेइयघरे साहुसमीवे घरे पोसहसालाए वा जत्थ वा वीसमइ अच्छइ निव्वावारो सव्वत्थ करेइ सव्वं चउसु ठाणेसु नियमा कायव्वं । अत्र सर्वशब्देन सर्वं षडावश्यकं इति वृद्धा व्याख्यान्ति । चेइयघरे साहुमूले पोसहसालाए घरे आवस्सयं करेंतो त्ति । यदि धरणादिभीः स्यात्तदा साधुसकाशे न करोति । ताहे घरे चेव सामाइयं काऊण उवाहणाओ मोत्तूण सचित्तदव्वविरहिओ वच्चइ । तत्रानुक्तोऽपि श्रीभगवत्याद्युक्तः श्राद्धस्य साधुपार्श्वे गमे पञ्चविधाभिगमो ज्ञेयः । पंच समिओ तिगुत्तो । ईरियाए उवउत्तो जहा साहू भासाए सावज्जं परिहरन्तो एसणाए कट्ठं लेट्ठुं वा पडिलेहेत्तु पमज्जिउं, एवं आयाणे निक्खेवणे खेले सिंघाणे न विगिंचति विगिंचंतो वा पडिलेहिय पमज्जिय थंडिले, जत्थ चिट्ठइ तत्थ गुत्तिनिरोहं करेइ । एयाए विहीए गन्ता तिविहेण नमिऊण साहुणो पच्छा साहुसक्खियं सामाइयं करेइ । अत्र श्राद्धस्य शालागमसाधु-

नवमव्रत-
स्वरूपमति-
चाराश्च ।

वन्दनादौ मुद्रा चिन्त्या । करेमि भंते ! सामाइयं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि दुविहं तिविहेणं जाव साहू पज्जुवासामि त्ति काऊणं । अत्र दुविहं तिविहेणं ति पदविपर्यासं पुरःसंक्षेपनधिया सावज्जंजोगंशब्दविशेषणज्ञापनाय घटते तत्त्वेवं पाठः । जइ चेइआइं अत्थि तो पढमं वन्दइ, अत्र प्रथमशब्दाच्चैत्याभावे पश्चाच्चैत्यानि वन्दते इति वृद्धाः । साहूणं सगासाओ रयहरणं निसिज्जं वा मग्गइ, अह घरे तो से उग्गहियं रयहरणं अत्थि तस्स असइ पोत्तस्स अंतेणं । अत्र रजोहरणमार्गणं अथ न रजोहरणाभावे पोतस्य वस्त्रस्यान्तेनेति यदुक्तं तत्किमर्थं ? भूप्रमार्जनार्थं वा धर्मध्यानकरणार्थं वाऽन्यहेतवे वा तच्चिन्त्यम् । तथा रजोहरणशब्दोऽत्र मोरपिच्छरजोहरणार्थो घटतेऽन्यधर्मध्वजदारुदण्डादि चिन्त्यमानं न सङ्गतिमङ्गति । पच्छा इरियावहियं पडिक्कमइ पच्छा आलोएत्ता वन्दइ । आगमनं आलोच्य द्वादशावर्त्तवन्दनं दत्ते इति वृद्धाः । आयरियादी अहारायणियाए यथाज्येष्ठमित्यर्थः । पुणो वि गुरुं वंदित्ता पडिलेहित्ता निविट्ठो पुच्छइ पढइ वा, एवं चेइएसु वि । अत्र चैत्येष्वपीत्यतिदेशः सम्यक् चिन्त्यः, असइ साहुचेइआणं पोसहसालाए सगिहेव सामाइयं आवस्सयं वा करेइ । अत्र वाशब्द-श्चार्थे । यद्वा अशक्तः केवलसामाइकदण्डकं उक्त्वा तिष्ठतीति वृद्धाः । तत्थ भणइ जावनियमं समाणेमि परमयं पाठो न श्रूयते । जो इड्ढिपत्तो सो एंतो सव्विड्ढिए एइ तो जणस्स अत्था होइ, अनेन वाक्येनैवं ज्ञायते यथा जनास्था वृद्धिस्तथा न दोषः । आढिया य साहुणो सप्पुरिसपरिग्गहेणं । साधवः सत्पुरुषपरिग्रहेण सत्पुरुषाणां वन्दनाद्याग्रहेण आदृताश्च जनमान्याः स्युस्तेन श्राद्धैर्गुरूणां अभिग्रहादिभावद्रव्यस्तवः क्रियते तद्युक्तं इति वृद्धाः । जइ सो कयसामाइओ एइ ताहे आसहत्थि-माइणा जणेण य अधिगरणं पवत्तइ । ताहे न करेइ । सामायिकं गृहे कृत्वा नायातीत्यर्थः । कयसामाइएण पाएहिं

आगंतव्वं। तेण न करेइ। कृतसामायिकस्योपानत्याग एव लोकाद्विशिष्ट उक्तः न तु प्रावरणमोचनादि। अत्र सामायिकनिषेधोऽपि दोषाय न गणितः व्यवहारादिनयप्रामाण्यात्। आगओ साहुसमीवे करेइ। जइ सो सावगो तो न कोइ उट्ठेइ। अह अहाभद्दउ त्ति पूया कया होइ त्ति। अथ भद्रक एवास्ति राजा तेन पूजा कृता वीक्ष्यते। ताहे पुव्वरइयं आसणं करेइ। गुरूणां पूर्वरचितं आसनं क्रियते। आयरिया उट्ठिया य अच्छंति। उत्थितास्तिष्ठन्ति। स सामाइयं काऊण पडिक्कंतो वंदित्ता पुच्छइ। अत्र वन्दित्वा कृतिकर्म्मणेति घटते। सो य किर सामाइयं करिंतो मउडं न अवणेइ मुकुटं नापनयति न मुञ्चेत्। कुण्डलाइनाममुद्दं पुप्फतंबोलपावारगमाइ वोसिरइ। अत्र प्रावारकादीनिशब्देन अप्रतिलेख्यवस्त्रपञ्चकमध्यस्थं पल्हवि(वी)कोयव(वि)पावार इति प्रावारनामकं झीलाच्छाटडाप्रभृति त्यजति यथा साणीपावारपिहियं। अत्र प्रावारशब्दार्थः न तु प्रावार इत्युत्तरासङ्गः, यतः सिद्धान्ते प्रावारशब्देनोत्तरासङ्गः क्वापि न व्याख्यातः। अन्ने भणन्ति मउडं पि अवणेइ। एसा विही सामाइयस्स। अत्र सामायिकशब्देन सर्वावश्यकनिगमनं ज्ञेयम् इति वृद्धाः, नो चेदमुना विधिना सामायिकं कोऽपि कुर्वन्नन्यगच्छेषु नोपलभ्यते। सव्वं चउसु ठाणेसु नियमा कायव्वं ति। यदा पूर्वोक्तस्थानपञ्चकमध्याच्चैत्यादिषु चतुर्षु स्थानेषु सामायिकं करोति तदा नियमादावश्यकं सर्वमपि षड्विधमपि करोमीति। ननु सर्वमिति विशेषणं तस्य चावश्यकं विशेष्यत्वेन कथं लभ्यते? उच्यते केवलस्य श्रावकसामायिकस्य सर्वमिति विशेषणस्यासम्भवात्। उत्तरत्र चानन्तरमेव आवस्सयं करिंतो त्ति इत्यादिनावश्यकविधेर्वक्ष्यमाणत्वादावश्यकमिति विशेष्यं संगच्छत एव। आवासयं करिंतो

त्ति आवश्यकशब्देन केवलमेव सामायिकमिति न वाच्यं, यतो निरुपपदेनावश्यकशब्देनाध्ययनषट्कमेवोच्यते, तथाहि 'आवस्सयं अवस्सकरणिज्जं धुवनिग्गहो विसोही य। अज्झयणछक्कवग्गो नाओ आराहणामग्गो' ।१। अनुयोगद्वारे। 'आवासं काऊणं'। आचा० निर्यु०। यदा प्रथमादिविशेषणमावश्यकस्य तदैकैकं लभ्यतेऽन्यथा तु षट्कमेवेति। तथा 'आवासयं करिंतो त्ति' त्यत्र इतिशब्दः प्रस्तावनार्थः यथा 'कहं वयामो त्ति तत्थ उव्वया'। ओघ० नि०। 'मित्ति मिउमद्दवत्ते' गाथाद्वये स्थानषट्के इतिशब्दाः प्रस्तावनार्थाः। 'आव०' अत एव चउसु ठाणेसु नियमा कायव्वं इत्यादिपदानां श्रीमदभयदेवसूरिभिरप्येवं पदयोजना कृता तद्यथा चतुर्षु स्थानेषु पुनर्नियमात्करोति चैत्यगृहे साधुसमीपे पौषधशालायां स्वगृहे वावश्यकं कुर्वाणस्तत्र यदि साधुसमीपे करोति तत्रायं विधिरिति प्रथमपञ्चाशकवृ०। तथावश्यकं कुर्वाणस्तत्र यदि साधुसमीपे करोति तत्रायं विधिरित्येतेन वाक्येनास्य उत्तरग्रन्थेन सह सम्बन्धं कुर्वतोऽस्यायमाशयो लक्ष्यते। पुनः कश्चिदाह नन्वस्मिन् दण्डके सामायिकस्य प्रस्तुतत्वात् पर्यन्ते च 'एसा विही सामाइयस्स' इति भणनाच्च कथमन्तरा षडावश्यकमापतितमिति चेदुच्यते 'सव्वं चउसु ठाणेसु नियमा कायव्वमि'त्यादिवाक्यात् यदि च सामायिकमेवात्र केवलं निर्वाण(ह्य) स्यात्तदा 'जत्थ वा वीसमइ अच्छइ वा निव्वावारो करेइ' इत्येतत्पदानन्तरं 'तत्थ जइ साहुसगासे करेइ तत्थ का विही' इत्येवं पठितं स्यात्, न पुनः 'सव्वं चउसु ठाणेसु इत्यादिकं आवस्सयं करिंतो त्ति' तत्पर्यन्तं मध्यवाक्यमिति। अपरं च सामायिकस्य प्रस्तावना 'तं सावएण कहं कायव्वमि'त्यनेनैव पदेन कृता, तत् किं पुनरपि तस्यैव प्रस्तावनार्थं 'आवस्सयं करिंतो त्ति' पठ्यते? तस्मादेते(तेन) षडावश्यकमेव प्रस्तावयत इत्यवबुध्यते। किञ्च यद्यत्र सामायिकस्यैव विधिः स्यान्न पुनः षडावश्यकस्य ततः 'ताहे घरे चेव सामाइयं

आगंतव्वं। तेण न करेइ। कृतसामायिकस्योपानत्त्याग एव लोकाद्विशिष्ट उक्तः न तु प्रावरणमोचनादि। अत्र सामायिकनिषेधोऽपि दोषाय न गणितः व्यवहारादिनयप्रामाण्यात्। आगओ साहुसमीवे करेइ। जइ सो सावगो तो न कोइ उट्ठेइ। अह अहाभद्दउ त्ति पूया कया होइ त्ति। अथ भद्रक एवास्ति राजा तेन पूजा कृता वीक्ष्यते। ताहे पुव्वरइयं आसणं करेइ। गुरूणां पूर्वरचितं आसनं क्रियते। आयरिया उट्ठिया य अच्छंति। उत्थितास्तिष्ठन्ति। स सामाइयं काऊण पडिक्कंतो वंदित्ता पुच्छइ। अत्र वन्दित्वा कृतिकर्म्मणेति घटते। सो य किर सामाइयं करिंतो मउडं न अवणेइ मुकुटं नापनयति न मुञ्चेत्। कुण्डलाइनाममुद्दं पुप्फतंबोलपावारगमाइ वोसिरइ। अत्र प्रावारकादीनिशब्देन अप्रतिलेख्यवस्त्रपञ्चकमध्यस्थं पल्हवि(वी)कोयव(वि)पावार इति प्रावारनामकं झीलाच्छाटडाप्रभृति त्यजति यथा साणीपावारपिहियं। अत्र प्रावारशब्दार्थः न तु प्रावार इत्युत्तरासङ्गः, यतः सिद्धान्ते प्रावारशब्देनोत्तरासङ्गः क्वापि न व्याख्यातः। अन्ने भणन्ति मउडं पि अवणेइ। एसा विही सामाइयस्स। अत्र सामायिकशब्देन सर्वावश्यकनिगमनं ज्ञेयम् इति वृद्धाः, नो चेदमुना विधिना सामायिकं कोऽपि कुर्वन्नन्यगच्छेषु नोपलभ्यते। सव्वं चउसु ठाणेसु नियमा कायव्वं ति। यदा पूर्वोक्तस्थानपञ्चकमध्याच्चैत्यादिषु चतुर्षु स्थानेषु सामायिकं करोति तदा नियमादावश्यकं सर्वमपि षड्विधमपि करोमीति। ननु सर्वमिति विशेषणं तस्य चावश्यकं विशेष्यत्वेन कथं लभ्यते? उच्यते केवलस्य श्रावकसामायिकस्य सर्वमिति विशेषणस्यासम्भवात्। उत्तरत्र चानन्तरमेव आवस्सयं करिंतो त्ति इत्यादिनावश्यकविधेर्वक्ष्यमाणत्वादावश्यकमिति विशेष्यं संगच्छत एव। आवासयं करिंतो

कायव्वमाह सवे को दोसो ?
कचुम्यां च इत्थमेव व्याख्यातं, तथाहि 'गिहिणो वि सव्ववज्जं दुविहं तिविहेण छिन्नकालं तं। सर्वशब्दोच्चारणरहितं
ममए पुमई'। १। भाष्यं। गृहस्थेनापि मता तत्सामायिकं छिन्नकालं द्विघटिकाकालमानोपेतं सर्ववज्जं
द्विविधं त्रिविधेन कर्त्तव्यमेवेति वृत्तिः।

जइ चेइआइं अत्थि तो पढमं वन्दइ। अत्र प्रथममिति भणनात् सामायिके कृते पश्चादपि चैत्यवन्दना कार्येति।
अन्यथा जइ चेइआइ अत्थि तो वन्दइ इत्युक्तमेव स्यात्। तथा चैतत्सामायिकं सर्वकालमपि स्यात्। मुहूर्त्ताधिकं च न
स्यात्तदा कथं सामायिकं कृत्वा साधुपार्श्वे याति ? स्तोककालात् कृत्वा पारयित्वा च किं न याति ? तेनैवं ज्ञायते प्रातः
सायमेकैकमेव बहुकालं यावत्सामायिकं स्यात्ततश्च गुरुसाक्ष्युच्चरति। चेत्परम्परागतः श्राद्धावश्यकविधिरेवमभविष्यत्तदा ज्ञायते
सिद्धान्तोक्तोऽयमिति। रयहरणं निसिज्जं वा मग्गइ, भूप्रमार्जनाय मयूरपिच्छादिमयं दंडामनाख्यं रजोहरणं निषद्यां वा
याचते इति। अन्य युक्तिस्तु प्राक् मुखवस्त्रिकाधिकारे सर्वा समर्थितास्ति। तथा पच्छा आलोइत्ता वन्दइ त्ति, आगमनं
आलोच्य द्वादशावर्त्तवन्दनं ददाति। वन्दतेशब्देन आगमे द्वादशावर्त्तवन्दनमुच्यते इति प्राग् दर्शितमस्ति।

'सामाइयं आवस्सयं वा करेइ त्ति' इह तावत् 'सव्वं चउसु ठाणेसु नियमा कायव्वमित्यादिना' आवश्यकविधानस्थान-
संग्रहं कृत्वा ततस्तस्यैव तेषु चतुर्ष्वपि स्थानेषु विधीयमानस्य 'आवस्सयं करिंतो त्ती' त्यादिना 'एसा विही सामाइयस्स'
एतत्पर्यन्तेन ग्रन्थेन समग्रोऽपि विधिरुक्तः। तत्रापि जइ साधुसगासे करेइ इत्यादिना पुच्छइ पढइ इत्यन्तेन साधुमूले
विधीयमानस्यामूलचूलं विधिरुक्तः, ततस्तस्यैव साध्वभावे चैत्यगृहे विधीयमानस्य 'एवं चेइएसु वि' इत्यन्तेन पूर्वप्रदर्शित

काऊण' एतावतापि पूर्वकालभणनेन सामायिकानुष्ठानस्य समर्थितत्वात्, तदुत्तरग्रन्थोक्तस्तु विधिः किमर्थ इति? अथ गुरुभक्तिप्रतिपादनार्थ इति चेत् तदपि न, यतोऽयमेवानुष्ठानविधिश्चैत्ये पौषधशालायां गृहे वातिदेक्ष्यत इति। तथा यच्च पर्यन्ते 'एसा विही सामाइयस्स' इत्युक्तं तदपि न षड्विधावश्यकस्य बाधकं यतो यथा कायोत्सर्गनिर्युक्तौ कायोत्सर्गं प्रस्तूयान्तरा च प्रसङ्गागतं साधूनामावश्यकविधिमभिधाय पुनः कायोत्सर्गस्य निर्वाहः कृतस्तथाऽत्रापि सामायिकव्रते व्याख्यायमाने प्रस्तावात् सामायिकादिकं श्रावकस्य षडावश्यकमभिधाय पुनः सामायिकस्य निगमनं कृतमिति सम्भावयामः। तथा 'ताहे घरे चेव सामाइयं काऊणं ति' साधूपाश्रये गच्छतो मा कालातिक्रमः सामायिकस्य भवत्विति हेतोर्गृह एव एकमेव सामायिकसूत्रमुच्चार्य शेषानुष्ठानं तत्रैव करिष्यामीति विचिन्त्य साधूपाश्रये व्रजतीति सम्बन्धः। अथ सर्वमप्यनुष्ठानं गृहे कृत्वा किं न गच्छतीति[चेत्] उच्यतेऽत्र साधुमूलानुष्ठानस्य प्रस्तुतत्वात्। गृहानुष्ठानमार्गं(मग्रे) चतुर्थस्थाने वक्ष्यति। अतोऽत्र सामायिकसूत्रमात्रोच्चारणमेवावबुध्यते इति। 'करेमि भंते सामाइयमित्यादि'

ननु आचरणां विना कुतः श्रावकसामायिकसूत्रं लभ्यते? उच्यते यतिश्रावकयोः सामायिकसूत्रमेव, केवलं सर्वमिति, जावज्जीवा इति, तिविहं तिविहेणं ति, करंतं पीत्यादि विशेषाश्चत्वारः, ते च चूर्णिकृता 'करेमि भंते! सामाइयं, सावज्जं जोगं पच्चक्खामि, दुविहं तिविहेणं जाव साहू पज्जुवासामी'त्येवं भणता त्रयः साक्षादेव दर्शिताश्चतुर्थोऽपि 'दुविहं तिविहेणं' ति भणनाल्लब्ध एव। ततश्चैतद्विशेषचतुष्टयविशेषितं यतिसामायिकसूत्रमेव श्रावकोऽपि भणतीति। अयं चार्थः—'सावज्जजोगपरिवज्जणट्ठा सामाइयं केवलियं पसत्थं' इत्यस्या निर्युक्तिगाथाया व्याख्याने भाष्यमहोदधिना वृत्ति-

विकल्पितमेतदिति । यतः श्रीअभयदेवसूरिणाप्ययमेव 'पडिकंत' इतिशब्द इत्थमेव व्याख्यातस्तथाहि एवं सामायिकं कृत्वा ईर्यापथं प्रतिक्रान्तो वन्दित्वा पृच्छति पठति वा । प्रथमपञ्चाशके । तथा पुप्फ(प्फ)तम्बोलपावारगमाइ वोसिरइ त्ति, अत्र पावारगशब्देन दुष्प्रत्युपेक्ष्यो वस्त्रविशेषो ज्ञेयो न पुनः सामान्येन प्रावरणमित्यपि प्राग् मुखवस्त्रिकाधिकारे निर्णीतमस्ति। 'खरडो तह वोरठी(वोरुद्दी) सलोमपडओ तहा हवइ जीणं । सदसं वत्थं पल्हविमाईणमिमे उ पजाया' ॥ १ ॥ इति प्रवचन-सारोद्धारे। यद्यत्र दण्डके प्रत्याख्यानं साक्षान्नोक्तं तथापि विधिवादचरितानुवादाभ्यां श्रावकस्यापि प्रत्याख्यानाधिकारित्वात्, 'आवस्सयं करिंतो त्ति' इत्यादिना च षड्विधावश्यकस्य प्रस्तुतत्वात् प्रत्याख्यानमपि विधेयमेव । तथा चावश्यकस्य चूर्णौ संकेयं नाम केतमिति गृहस्याख्या गृहवासिनां प्रत्याख्यनमित्युक्तं भवति । तथा सावओ पोरिसिं पच्चक्खाइत्ता खित्तं गओ इत्यादि । तथा एलकाक्षोत्पत्तौ साविगा एगस्स मिच्छादिट्ठियस्स दिन्ना । वेयालियं आवस्सयं करेइ पच्चक्खाइ य । आव०चूर्णौ । तस्मादत्रानुक्तमपि प्रत्याख्यानं ज्ञेयं । प्रत्याख्यानान्ते च देसावगासियं उवभोगपरिभोगं पच्चक्खामीति व्रत-द्वयमुच्चार्यम् । देशावकाशिके च पूर्वगृहीतसर्वव्रतप्रमाणानि स्मृत्वा संक्षेप्याणि । उक्तं चावश्यकचूर्णौ देसावगासिगाधिकारे एवं सव्ववएसु जे पमाणा ठविया ते पुणो दिवसे उस्सारेइ । एवं 'एगमुहुत्तं दिवसं राइं पंचाहमेव पक्खं वा । वयमिह धारेउ दढं जावइयं उस्सहे कालं' ।१। इत्यादि । व्रतप्रमाणस्मरणे च व्रतानां शोधनार्थं श्रीउपासकदशासूत्रावश्यकादिनिर्युक्त्यादियुक्त्या सम्यक्त्वमूलद्वादशव्रतसंलेखनातीचाराः पञ्चाशीतिरालोचनीयाः, आनन्दादिभ्यः श्रीवीरेणैषामतीचाराणामेवोक्तत्वात् । तत एवं षड्विधावश्यकं कृत्वा 'पाणिवहमुसावाए अदिन्नमेहुणपरिग्गहे चेव । सयमेगं तु अणूणं उस्सासाणं भविज्जाहि' ॥ १ ॥

एव साधुमूलविहितविधिर्निरवशेषोऽप्यतिदिष्टः। ततोऽपि तस्यैव साधुचैत्ययोरभावे पौषधशालायां वा स्वगृहे वा विधीयमानस्य असइ साहुचेइआणमित्यादिना जावनियमं समाणेमि इत्येतदन्तेन पुनरपि स एव साधुमूले विहितविधिरतिदिष्टः। केवलमत्र विशेषत्रयं, तच्चेदं पूर्वं हि गृहे केवलमेव सामायिकमङ्गीकृत्य ततः साधुमूलचैत्ययोः समागत्य तत्साक्षिकं सामायिकोच्चारणपूर्वकं सामायिकादिकं सर्वमप्यावश्यकं कृतवान्। इह तु सामायिकमप्यावश्यकमपि एकत्रैव करोति, इह वाशब्दद्वयस्यापि समुच्चयार्थत्वात् १। तथा पूर्वं सामायिकं कृत्वा साधुमूले गतोऽत्र गमनं नास्ति २। तथा पूर्वं जावसाहु त्ति भणितवान् अत्र तु जावनियममिति ३। अत एवाह ग्रन्थकारः 'सामाइयं आवस्सयं वा करेइ १' नवरि तत्थ गमणं नत्थि २। भणइ जावनियमं समाणेमि ३। तथात्र वाशब्दानां समुच्चयार्थत्वमागमे स्थाने स्थाने प्रसिद्धमेव, तथाहि 'सुहुमं वा बायरं वा, तसं वा थावरं वा' इत्यादि व्रतषट्केऽपि वाशब्दाः। विकल्पार्थव्याख्या पुनर्नावबुध्यते यतोऽयमिति देशे व्याख्यायमानोऽस्ति स च पूर्वप्रदर्शितस्यैव विधिः। पूर्वं वात्र सामायिकावश्यकयोः समुदितयोरेव विधिर्भणितो न पुनरेकैकस्य पृथक् पृथगिति। ततो विकल्पार्थेन वाशब्देन को द्वितीयो विधिः प्रदर्शितः ? इति। 'पच्छा सो इड्ढिपत्तो सामाइयं काऊण पडिकंतो त्ति वंदित्तेत्यादि' अत्र कश्चिदाह पडिकंतो त्ति वंदित्तु सव्वसिद्धेत्यादि प्रतिक्रमणं कृतवानिति तदयुक्तं यतो यदेव प्रतिक्रमणं सर्वमिहैवानेनैव चूर्णिकृताऽनृद्धिप्राप्तमाश्रित्योक्तमृद्धिप्राप्तस्यापि तदेव युज्यत इति। तच्च पूर्वोक्तमिदं 'पच्छा इरियावहियाए पडिक्कमइ पच्छा आलोइत्ता वन्दइ इत्यादि, तत इहापि 'पडिकंत' इति ईर्यापथं प्रतिक्रान्तवानिति व्याख्या युक्तिमता। न च वाच्यं स्वमनीषिकया

श्राद्धसाध्वोरैर्यापथिक्यां कथं समोल्लूयामाः ? । उच्यते समितगुप्तयोर्द्वयोरप्येवंशुद्धेर्देशसर्वविरत्योः प्रपत्त्या सम्यक्त्वबलात् नारये महामीनः, असमितयोस्तु द्वयोरप्यन्यच्छेदपदैर्नवापि संयमस्थानभेदानां श्राद्धगुणानां च तारतम्येन वृद्धिहान्योरस-दृश्यत्वात्, तत आवश्यके साम्यमेव इति श्रावकयोग्यषडावश्यकविचारः।

ननु कृतसामायिकः श्राद्धो गुणैः साधुरेव। स कस्मादित्वरं सामायिकं सर्वसावद्ययोगं प्रत्याख्यामीति नोच्चरति ? सर्व-सावद्यविरतेरगारिणोऽसम्भवात् आरम्भेष्वनुमतेरव्यवच्छिन्नत्वात् कनकादिषु चात्मग्रहानिवृत्तेः साधुश्रावकयोश्च प्रपञ्चेन भेदाभिधानात् तथा चाह—

सिक्खा दुविहा गाहा उववातठिती गती कसाया य। बंधंता वेदेन्ता पडिवज्जाइक्कमे पंच ॥ १ ॥

शिक्षाकृतः साधुश्रावकयोर्महान् भेदः। शिक्षा द्विधाऽऽसेवनाशिक्षा ग्रहणशिक्षा च। शिक्षाऽभ्यासस्तत्रासेवनाशिक्षामाश्रित्य सम्पूर्णमेव चक्रवालसामाचारीं सदा साधुः पालयति। श्रावकस्तु आचाराङ्गोक्तां सामायिकेऽपि पूर्णां न पालयत्यज्ञानादसम्भ-वाच्च। ग्रहणशिक्षां त्वाश्रित्य साधुर्जघन्येन सूत्रतोऽर्थतश्चाष्टौ प्रवचनमातृरुत्कृष्टतस्तु बिन्दुसारपर्यन्तं गृह्णाति। श्रावकः सूत्रतोऽ-र्थतश्च जघन्येनाष्टप्रवचनमातृरुत्कृष्टतः षड्जीवनिकां भणति व्याख्यानयति च। अर्थतस्तु पिण्डैषणां आचाराङ्गोक्तां शृणोति तथा गाथासूत्रप्रामाण्याच्च, यत उक्तं 'सामाइयंमि उ कए०' अत्र सामायिके श्रावकः श्रमण इव स्यादित्युक्तं न तु श्रमण एवेति यथाऽभिधवराडागः। शेषं प्राग्व्याख्यातमेव। तथोपपातस्यापि भेदः श्राद्धस्योत्कृष्टोपपातोऽच्युते, साधोस्तु सर्वार्थसिद्धौ जघन्येन द्वयोरपि सौधर्मोपपातः। स्थितेरपि भवान्तरे भेदः श्राद्धस्य जघन्या स्थितिः पल्यमुत्कृष्टा द्वाविंशति सागराणि।

इति आवश्यकनिर्युक्तिवचनात् कुस्वप्नकायोत्सर्गः साधुवत् श्राद्धस्यापि युज्यते यथा ईर्यापथकायोत्सर्गः साधुश्राद्धयोस्तुल्य एवेति । तथा 'सो उस्सग्गो दुविहो चिट्ठाए अभिभवे य नायवो । भिक्खायरियाए पढमो उवसग्गभिजुंजणे बीओ' ॥ १ ॥ इत्यादि गाथा । ततः सामायिके कृते द्वितीयोऽभिभवकायोत्सर्गोऽपि युक्तः, यथा चन्द्रावतंसकराजादिभिः कृत इति । किञ्चैष आवश्यकविधिः स्वल्पोऽपि पूर्वश्रुतधराभिहितत्वात्तत्प्रमाणमेव । यदि च समधिकमपि विधिं सूत्रभाष्यचूर्णिचिरन्तनवृत्त्यादिभिः श्राद्धमाश्रित्य कोऽपि दर्शयति तदा सोऽपि प्रमाणं नात्र कोऽप्यभिनिवेशोऽस्ति यतः 'से नूणं भंते ! तमेव सच्चं नीसंकं जं जिणेहिं पवेइयं, हंता गोयमा ! तमेव सच्चं नीसंकं जं जिणेहिं पवेइयं' भगवत्यां, स्थानकेष्वपि 'आगम आयरंतेण अप्पणो हियकंखिणा । तित्थनाहो गुरू धम्मो सवे ते बहुमन्निया' ॥ १ ॥ अतः सिद्धान्तोक्तविधिः श्रद्धेयः । पञ्चमे क्षेत्रखलादौ सामायिकस्थाने कदाचित्सम्पूर्णमपि षडावश्यकं कदाचिदसम्पूर्णमपि कदाचित्केवलमपि सामायिकं भवति । तथाहि यदि चिरं स्थास्यति निर्व्यापारश्च भूमिरपि निषद्या रूयादिसंघट्टोद्योतिकादिवर्जिता मिथ्यादृष्ट्यादिसागारिकाभावश्च तदा सर्वमावश्यकं कुर्यात्, कारणे तु सामायिकरहितमप्यावश्यकं, विशेषकारणे तु केवलं सामायिकं कृत्वा नमस्कारादि परावर्त्तते । सामायिकवेलाया अभावे त्वभिग्रहविशेषरूपं ग्रन्थ्यादि यावत् सावद्यप्रत्याख्यानं कुर्यात् । यतोऽत्रैवाग्रे चूर्णौ 'अंगुट्ठमुट्ठिगंठी त्ति' व्याख्याने 'ताव न जेमेमि जाव न मुट्ठिं मुयामीत्यादि' । न केवलं भत्ते अन्नेसु वि अभिग्गहविसेसेसु । ततोऽभिग्रहविशेषाः सर्वार्थविषया भवन्ति । तथा 'वंदित्तु सवसिद्धे' इत्यादि प्रतिक्रमणनामरूढं सूत्रं निर्युक्तौ नोक्तं, तथा श्राद्धानां पाक्षिकप्रतिक्रमणसूत्रे च भिन्नेन क्षामणानि च । ततोऽयमावश्यकचूर्ण्युक्तः संक्षिप्तोऽप्यावश्यकविधिश्चिरन्तनश्राद्धानां ज्ञेयः । ननु

मर्वतः ३। अमुकं मावद्यव्यापारं न दिवा रात्रौ वा प्रमाणेन वा कुर्वे इति देशतः। अहोरात्रं व्रतं पालयामीति मर्वतः ३। अमुकं मावद्यव्यापारं न करिष्यामीति देशतः, मर्वं न कुर्वे इति मर्वतोऽव्यापारपोपधः ४। अत्र देशतः पोपधशब्दो देशावकाशिकवाची घटते नन्वतीचारप्रतिबद्धपोपधव्रतवाची, यतः चूर्णौ 'तं सत्तिओ करिज्जा तवो य जो वण्णिओ समणधम्मे। देसावगासिएण न जुत्तो मामाइएणं वा' ॥ १ ॥ तपश्च एतार्थे द्वादशधा श्रमणधर्मे यद्वर्णितं तच्छक्तितः कुर्यात् देशावकाशिकेन युक्तो देशपोपधवान तपः कुर्यात्, सामायिकेन वा युक्तः सर्वपोपधवान् तपः कुर्यात्। परं देशावकाशिकवान् श्राद्धः मदा स्यात् तेन देशपोपधोऽस्त्येव, परं स पोपधशब्दो रूढिं न लभते यथाऽविरतानां सामायिकं, उक्तं चेत्थं 'सव्वेसु कालपव्वेसु पसत्थो(त्थे) जिणमए तवो जोगो। अट्ठमिपन्नरसीसु च, नियमेण हविज्ज पोसहिओ' ॥ १ ॥ सर्वेषु कालपर्वसु शनिवादादिषु जिनमते तपो योगः प्रशस्तः, परमष्टमीपञ्चदशयोर्नियमात्पोपधिको भवेत्। अत्र सर्वपोपध एव घटतेऽन्यथा विशेषाभिधानं कथम्? तपसि देशपोपधस्यायातत्वादेव तथा यो देशपोपधं करोति स सामायिकं करोति न वा करोति। यः सर्वपोपधं करोति स नियमात्करोति। अत्र सामायिकं करोति न वा करोतीतिशब्देन पोपधसम्बद्धं सामायिकं न घटते किन्त्वावश्यककाले करोति न वा। अथ पोपधविधिः—'तं कहिं? चेइयघरे साहूमूले घरे वा पोसहसालाए वा उम्मुक्कमणि-सुवण्णो पढन्तो पुत्थयं वाएइ, धम्मज्झाणं झाएइ, जहा एए साहुगुणा अहं असमत्थो मन्दभग्गो धारिउं' इत्यादि। एवं पोपधो यो वर्णितः स सर्वपोपध एव घटते। तत एव वृत्तिकृदाह–इदमपि शिक्षापदव्रतं निरतिचारं पाल्यम्। 'पोसहो' पोपधोपवासस्य पोपमारस्थानस्य पञ्चातीचाराः। अप्रत्युपेक्षितदुष्प्रत्युपेक्षितशय्यासंस्तारो शय्या फलकाद्यास्तीर्यते शयनाय पोपधिना इति,

पोसहे, पोसहोववासस्स समणोवासएणं इमे पञ्च अइयारा जाणियव्वा, तंजहा-अप्पडिलेहियदुप्पडिलेहियसिज्जासंथारए अपमज्जियसिज्जासंथारए अप्पडिलेहियदुप्पडिलेहियउच्चारपासवणभूमीओ अप्पमज्जियदुप्पमज्जियउच्चारपासवणभूमीओ पोसहोववासस्स सम्मं अणणुपालणया ११ ॥ (सूत्रम्)

इह पोषधशब्दो रूढ्या पर्वसु वर्त्तते । पर्वाणि चाष्टम्यादितिथयः । पूरणात्पर्व, धर्म्मोपचयहेतुत्वादित्यर्थः । अत्र पोषधशब्दो रूढ्या पर्वस्विति चिन्त्यं, ये पोषधा अविरतैर्भरतादिभिर्दिनत्रयमिहलोकार्थं कृताः ते पोषधव्रतमध्ये न घटन्ते आशंसारूपत्वेन निष्फलत्वात् । नामग्रहण एव यदि ग्राह्यस्तदा सामायिकशब्दोऽपि सम्यक्त्वसामायिके वर्त्तमानत्वात् 'बहुसो सामाइयं' इति कथं ? यावज्जीवं सामायिकं इति किं न ? पोषधशब्दश्च नियमभोजनतपोमुख्यार्थेषु सिद्धान्तशैल्या दृश्यते । परं व्रताधिकारे सर्वपोषध एव युक्त्या दृश्यतेऽतीचाराश्च तस्य । स च पर्वसु रूढो भवति । तथा पर्वाण्यष्टम्यादय इति, पञ्चम्यादयो द्वितीयाद्या वा किं नोक्ताः ? । पोषधे उपवसनं पोषधोपवासः । नियमविशेषाख्यानं चेदं । पोषधोपवासश्चतुर्विधः प्रज्ञप्तस्तद्यथा—आहारपोषध आहारनिमित्तं धर्म्मपूरणं पर्वेति भावः । एवं शरीरसत्कारविषयं धर्म्मपूरणं शरीरसत्कारपोषधः । तथा ब्रह्म कुशलानुष्ठानं चर्यं समाचरणीयं ब्रह्म च तच्चर्यं चेति समासः । एवं अव्यापारपोषधो हि सावद्यव्यापारत्यागः । तत्राहारपोषधो द्विधा देशतः सर्वतश्च । देशे विकृत्यादिसंक्षेपाचाम्लैकाशनद्विर्भक्तादिरूपः, सर्वतः अहोरात्रं चतुराहारत्यागः १ । तथा शरीरसत्कारपोषधः स्नानोद्वर्त्तनविलेपनपुष्पगन्धताम्बूलवस्त्राभरणादीनां मध्यादमुकं शरीरसत्कारं न करिष्यामीति देशतः, सर्वं स्नानादि न कुर्वे इति सर्वतः २ । एवं ब्रह्मचर्यं

दिवा रात्रौ वा प्रमाणेन वा कुर्वे इति देशतः। अहोरात्रं ब्रह्म पालयामीति सर्वतः ३। अमुकं सावद्यव्यापारं न करिष्यामीति देशतः, सर्वं न कुर्वे इति सर्वतोऽव्यापारपोषधः ४। अत्र देशतः पोषधशब्दो देशावकाशिकवाची घटते नत्वतीचारप्रतिबद्धपोषधव्रतवाची, यतः चूर्णौ 'त सत्तिओ करिज्जा तवो य जो वण्णिओ समणधम्मे। देसावगासिएण य जुत्तो सामाइएणं वा' ॥ १ ॥ तपश्च एतदर्थे द्वादशधा श्रमणधर्मे यद्वर्णितं तच्छक्तितः कुर्यात् देशावकाशिकेन युक्तो देशपोषधवान् तपः कुर्यात्, सामायिकेन वा युक्तः सर्वपोषधवान् तपः कुर्यात्। परं देशावकाशिकवान् श्राद्धः सदा स्यात् तेन देशपोषधोऽप्यस्त्येव, परं स पोषधशब्दो रूढिं न लभते यथाऽविरतानां सामायिकं, उक्तं चेत्थं 'सव्वेसु कालपव्वेसु पसत्थो(त्थे) जिणमए तवो जोगो। अट्ठमिपन्नरसीसु च, नियमेण हविज्ज पोसहिओ' ॥ १ ॥ सर्वेषु कालपर्वसु अष्टम्यादिषु जिनमते तपो योगः प्रशस्तः, परमष्टमीपञ्चदश्योर्नियमात्पोषधिको भवेत्। अत्र सर्वपोषध एव घटतेऽन्यथा नियमाभिधानं कथम्? तपसि देशपोषधस्यायातत्वादेव तथा यो देशपोषधं करोति स सामायिकं करोति न वा करोति। यः सर्वपोषधं करोति स नियमात्करोति। अत्र सामायिकं करोति न वा करोतीतिशब्देन पोषधसम्बद्धं सामायिकं न घटते किन्त्वावश्यककाले करोति न वा। अथ पोषधविधिः—'तं कहिं? चेइयघरे साहूमूले वरे वा पोसहसालाए वा उम्मुक्कमणि-सुवन्नो पढन्तो पुत्थयं वाएइ, धम्मज्झाणं झाएइ, जहा एए साहुगुणा अहं असमत्थो मन्दभग्गो धारिउं' इत्यादि। एवं पोषधो नो वर्णितः स सर्वपोषध एव घटते। तत एव वृत्तिकृदाह—इदमपि शिक्षापदव्रतं निरतिचारं पाल्यम्। 'पोसहो' पोषधोपवासस्य पोषधावस्थानस्य पञ्चातीचाराः। अप्रत्युपेक्षितदुष्प्रत्युपेक्षितशय्यासंस्तारो शय्या फलकाद्यास्तीर्यते शयनाय पोषधिना इति,

साधोर्जघन्या स्थितिः पल्यपृथक्त्वं उत्कृष्टा त्रयस्त्रिंशत्सागराणि । गतेर्भेदः साधुः सुरगतौ मोक्षेऽपि श्राद्धश्चतसृष्वेव । कषायाद्भेदः साधुः कषायोदयमाश्रित्य संज्वलनचतुस्त्रिद्व्येककषायोऽपि स्यादकषायो वा, श्रावकोऽप्यविरतो द्वादशकषायी देशविरतस्त्वष्टकषायी । बन्धाद्भेदः साधुर्मूलप्रकृत्यपेक्षयाऽष्टविधबन्धकः सप्तविधबन्धकः षड्विधबन्धक एकविधबन्धको वा श्राद्धस्त्वष्टविधबन्धको वा सप्तविधबन्धको वा । वेदनाभेदः साधुरष्टानां सप्तानां चतसृणां प्रकृतीनां वेदकः। श्राद्धस्त्वष्टानामेव । प्रतिपत्तिभेदः साधुः पञ्चमहाव्रतानि समकं प्रपद्यते, श्रावकस्तु एकमणुव्रतं द्वे इत्यादि। अथवा साधुः सकृत्सामायिकं प्रपद्य सर्वकालं धारयति श्रावकस्तु पुनः पुनः प्रपद्यते। अतिक्रमाद्भेदः साधोरेकव्रतातिक्रमे पञ्चव्रतातिक्रमः श्राद्धस्य त्वेकस्यैव । तथा 'सव्वं'ति सर्वं सावद्यं इति भणित्वा यस्य विरतिः सर्वा नास्ति अनुमतेर्नित्यप्रवृत्तत्वात् स सर्वविरतिवादी देशविरतिं सर्वविरतिं च भ्रंशयति। 'मण०' मनोदुष्प्रणिधानं मनसा गृहव्यापारादिसावद्यध्यानं १ । वाग्दुष्प्रणिधानं सावद्यासभ्यवादिताऽसमितेन च वक्तृत्वम् २ । कायदुष्प्रणिधानं अनिरीक्ष्याप्रमृज्य करांह्र्यादिन्यासः स्थानादेर्वा करणम् ३ । सामायिकस्य सम्बन्धिनी या स्मृतिरुपयोगस्तस्या अकरणम् । यथा प्रमादान्नैव सरत्यस्यां वेलायां मया सामायिकं कर्त्तव्यं कृतं न कृतमिति वा, यतः 'न सरइ पमायजुत्तो जो सामइयं कया उ कायव्वं। कयमकयं वा तस्स उ कयं पि विफलं तयं नेयं' । १ । ४ । सामायिकस्यानवस्थितस्य करणं । अनवस्थितमल्पकालं करणानन्तरमेव त्यजति, यथा 'काऊण तक्खणं चिय पारेइ करेइ वा जहिच्छाए । अणवट्ठियसामाइयं अणायाराओ असुद्धं तु ' । १ । करोति वा यदृच्छयाऽव्यवस्थितत्वेन ५ ।

दिसिव्वयगहियस्स दिसापरिमाणस्स पइदिणं परिमाणकरणं देसावगासियं, देसावगासियस्स सम-

सद्दाणुवाए रूवा-
णोवासगणं इमे पञ्च अइयारा जाणियव्वा, तंजहा-आणवणप्पओगे पेसवणप्पओगे
गुवाए बहिया पुग्गलपक्खेवे १० ॥ (सूत्रम्)

दिग्व्रतमध्यगृहीतस्य यावज्जीवसम्बन्धिदिक्परिमाणस्यैव प्रतिदिनमित्येतत् प्रहरमुहूर्त्ताद्युपलक्षणं प्रमाणकरणं दिनादि-
गमनयोग्यदेशस्थापनं प्रतिदिनप्रमाणकरणं देशावकाशिकम् । देशो दिग्व्रतप्रमाणस्य विभाग उपलक्षणात्प्राणातिपातादिव्रता-
नामपि यावज्जीवसम्बन्धिपरिमाणनियमानां दिनादिविषये देशतः सर्वतो वा आरम्भत्यागेन संक्षेपणं देशस्तस्यावकाशो गत्यादि-
नेशावन्धो देशावकाशस्तेन निवृत्तं देशावकाशिकं, यतः ' एगमुहुत्तं दिवसं राई पंचाहमेव पक्खं वा । वयमिह धारेउ दढं
जावइयं उच्छहे कालं ' ॥ १ ॥ देशावकाशिकव्रतं दृढं धारयेत् यावन्तं कालं उत्सहेत शक्नुयात् । आनयनप्रयोगः नियमित-
भूवाशात्तुनः परेण नरेण सन्देशादिना वा आनयनाय प्रयोजनं व्यापारणम् । एवं दिननियमे सावधानतया स्थेयं । स्वयम-
गच्छता परेणापि नानेयम् । बलाद्विनियोज्यः प्रेष्यस्तस्य प्रयोगोऽन्येन नियमितभूबहिःकार्यकारणं नियमितभूवो बहिः
कार्यकारणाय शुत्कासशब्दानुपातैः परस्य ज्ञापनं शब्दानुपातः ३ । एवं स्वरूपदर्शनं परेषां रूपानुपातः ४ । नियमितभुवां
बहिः कर्करादिपुद्गलप्रक्षेपः ५ । इह देशावकाशिकं प्राणिहिंसारक्षार्थं गृह्यते, अन्यप्रेषणे च प्राणिहिंसा कारितैव । ततः कृत-
कारितयोर्न कोऽपि फलभेदः । किन्तु स्वयं गतो ईर्याशुद्धिः स्यादन्यगतौ त्वदक्षत्वादयतनैवेति भावः । तथा नियमितभुवो
बहिः शब्दादयोऽपि विषयतया नानेयाः ते आसन्ने आयान्ति तदा मन्यं अहं वा आसन्नो यामीत्यादि न चिन्त्यम् ।
पोसहोववासे चउव्विहे पन्नत्ते, तंजहा-आहारपोसहे, सरीरसक्कारपोसहे, बंभचेरपोसहे, अव्वावार-

पोसहे, पोसहोववासस्स समणोवासएणं इमे पञ्च अइयारा जाणियव्वा, तंजहा-अप्पडिलेहियदुप्पडिलेहियसिज्जासंथारए अपमज्जियसिज्जासंथारए अप्पडिलेहियदुप्पडिलेहियउचारपासवणभूमीओ अप्पमज्जियदुप्पमज्जियउचारपासवणभूमीओ पोसहोववासस्स सम्मं अणणुपालणया ११ ॥ (सूत्रम्)

इह पोषधशब्दो रूढ्या पर्वसु वर्त्तते । पर्वाणि चाष्टम्यादितिथयः । पूरणात्पर्व, धर्म्मोपचयहेतुत्वादित्यर्थः । अत्र पोषधशब्दो रूढ्या पर्वस्विति चिन्त्यं, ये पोषधा अविरतैर्भरतादिभिर्दिनत्रयमिहलोकार्थं कृताः ते पोषधव्रतमध्ये न घटन्ते आशंसारूपत्वेन निष्फलत्वात् । नामग्रहण एव यदि ग्राह्यस्तदा सामायिकशब्दोऽपि सम्यक्त्वसामायिके वर्त्तमानत्वात् 'बहुसो सामाइयं' इति कथं ? यावज्जीवं सामायिकं इति किं न ? पोषधशब्दश्च नियमभोजनतपोमुख्यार्थेषु सिद्धान्तशैल्या दृश्यते । परं व्रताधिकारे सर्वपोषध एव युक्त्या दृश्यतेऽतीचाराश्च तस्य । स च पर्वसु रूढो भवति । तथा पर्वाण्यष्टम्यादय इति, पञ्चम्यादयो द्वितीयाद्या वा किं नोक्ताः ? । पोषधे उपवसनं पोषधोपवासः । नियमविशेषाख्यानं चेदं । पोषधोपवासश्चतुर्विधः प्रज्ञप्तस्तद्यथा-आहारपोषध आहारनिमित्तं धर्म्मपूरणं पर्वेति भावः । एवं शरीरसत्कारविषयं धर्म्मपूरणं शरीरसत्कारपोषधः । तथा ब्रह्म कुशलानुष्ठानं चर्यं समाचरणीयं ब्रह्म च तच्चर्यं चेति समासः । एवं अव्यापारपोषधो हि सावद्यव्यापारत्यागः । तत्राहारपोषधो द्विधा देशतः सर्वतश्च । देशे विकृत्यादिसंक्षेपाचाम्लैकाशनद्विर्भक्तादिरूपः, सर्वतः अहोरात्रं चतुराहारत्यागः १ । तथा शरीरसत्कारपोषधः स्नानोद्वर्त्तनविलेपनपुष्पगन्धताम्बूलवस्त्राभरणादीनां मध्यादमुकं शरीरसत्कारं न करिष्यामीति देशतः, सर्वं स्नानादि न कुर्वे इति सर्वतः २ । एवं ब्रह्मचर्यं

दिवा रात्रौ वा प्रमाणेन वा कुर्वे इति देशतः। अहोरात्रं ब्रह्म पालयामीति सर्वतः ३। अमुकं सावद्यव्यापारं न करिष्यामीति देशतः, सर्वं न कुर्वे इति सर्वतोऽव्यापारपोषधः ४। अत्र देशतः पोषधशब्दो देशावकाशिकवाची घटते नत्वेकाशनादिप्रतिबद्धपोषधव्रतवाची, यतः चूर्णौ 'तं सत्तिओ करिज्जा तवो य जो वण्णिओ समणधम्मे। देसावगासिएण य जुत्तो सामाइएणं वा' ॥ १ ॥ तपश्च एतदर्थे द्वादशधा श्रमणधर्मे यद्वर्णितं तच्छक्तितः कुर्यात् देशावकाशिकेन युक्तो देशपोषधवान् तपः कुर्यात्, सामायिकेन वा युक्तः सर्वपोषधवान् तपः कुर्यात्। परं देशावकाशिकवान् श्राद्धः सदा स्यात् तेन देशपोषधोऽस्त्येव, परं स पोषधशब्दो रूढिं न लभते यथाऽविरतानां सामायिकं, उक्तं चेत्थं 'सव्वेसु कालपव्वेसु पसत्थो(त्थे) जिणमए तवो जोगो। अट्ठमिपन्नरसीसु च, नियमेण हविज्ज पोसहिओ' ॥ १ ॥ सर्वेषु कालपर्वसु अष्टम्यादिषु जिनमते तपो योगः प्रशस्तः, परमष्टमीपञ्चदश्योर्नियमात्पोषधिको भवेत्। अत्र सर्वपोषध एव घटतेऽन्यथा विशेषाभिधानं कथम्? तपसि देशपोषधस्यायातत्वादेव तथा यो देशपोषधं करोति स सामायिकं करोति न वा करोति। यः सर्वपोषधं करोति स नियमात्करोति। अत्र सामायिकं करोति न वा करोतीतिशब्देन पोषधसम्बद्धं सामायिकं न घटते किन्त्वावश्यककाले करोति न वा। अथ पोषधविधिः—'तं कहिं? चेइयघरे साहुमूले घरे वा पोसहसालाए वा उम्मुक्कमणिसुवण्णो पढन्तो पुत्थयं वाएइ, धम्मज्झाणं झाएइ, जहा एए साहुगुणा अहं असमत्थो मन्दभग्गो धारिउं' इत्यादि। एवं पोषधो यो वर्णितः स सर्वपोषध एव घटते। तत एव वृत्तिकृदाह—इदमपि शिक्षापदव्रतं निरतिचारं पाल्यम्। 'पोसहो' पोषधोपवासस्य पोषधाख्यस्थानस्य पञ्चातीचाराः। अप्रत्युपेक्षितदुष्प्रत्युपेक्षितशय्यासंस्तारो शय्या फलकाद्यास्तीर्यते शयनाय पोषधिना इति,

संस्तारः दर्भकम्बलीवस्त्रादिः, प्रत्युपेक्षणं चक्षुषा निरीक्षणं, प्रमार्जनमासेवनकाले वस्त्रोपान्तादिना, न प्रत्युपेक्षितौ दुष्टप्रमत्ततया प्रत्युपेक्षितौ वा १, न प्रमार्जितौ दुष्टप्रमार्जितौ वा शय्यासंस्तारौ २, न प्रत्युपेक्षिता दुष्टप्रत्युपेक्षिता वा, न प्रमार्जिता दुष्टप्रमार्जिता वा उच्चारप्रश्रवणभूमयः, उच्चारो विट् प्रश्रवणं मूत्रं तयोर्भूमयः, उच्चारादिशब्दोपलक्षणान्निष्ठ्यूतस्वेदमलादित्यागभूमिः, अप्रत्युपेक्षितदुष्प्रत्युपेक्षितोच्चारप्रश्रवणभूमयः [अप्रमार्जितदुष्प्रमार्जितोच्चारप्रश्रवणभूमयः ३–४] । एत्थ पुण सामायारी कडपोसहो नो अपडिलेहियसेज्जं दुरूहइ आरोहति, संथारगं वा दुरूहइ, पोसहसालं वा सेवइ, दब्भवत्थे वा भूमीए संथरेइ, काइयभूमीओ आगओ पुणरवि पडिलेहइ, अन्नहाइयारो, एवं पीठगाइसु । तथा पोषधोपवासस्य सम्यक् प्रवचनोक्तविधिना निष्प्रकम्पेन चेतसाऽननुपालनं अनासेवनम् ५ । इत्थं भावना–'कयपोसहो अथिरचित्तो आहारे तात्र सव्वं देसं वा पत्थेइ । बिइयदिवसे पारणगस्स अप्पणो अट्ठाए आढत्ति करेइ कारावेइ वा, इमं इमं वत्ति करेह । तथा सरीरसकारे सरीरं उव्वट्टेइ । दाढियाओ केसा वा रोमाई वा सिंगाराभिप्पाएणं ठावेइ, दाहे वा सरीरं सिंचइ । एवं सव्वाणि सरीरभूसाकारणाणि[ण] परिहरइ । बंभचेरे इहलोइए परलोइए वा भोगे पत्थेइ संवाहेइ वा । अहवा सद्दरूवरसफरिसगन्धे वा अभिलसइ कइया बंभचेरपोसहो पुरिहि इति । अव्वावारे सावज्जाणि वावारेइ कयमकयं वा चिन्तेइ । एवं पंचाइयारसुद्धो अणुपालियव्वो त्ति । इह युक्त्या सर्वपोषध एवेयं युक्तिर्युक्ता न देशे, पोषधनामापि सर्वस्यैवोच्यते न तु देशस्य यतो वृत्तिकृता 'कयपोसहो अथिरचित्तो' इत्याद्युक्तं नतूक्तं 'कयसव्वपोसहो अथिरचित्तो' इति । तस्मात्पोषधः सर्वपोषध एव । ततो यत्केऽपि सूरयो निशीथभाष्यगाथार्थात्पोषधे आहारं ग्राहयन्ति तन्न ज्ञायते, यतः तत्रेयं गाथा 'जे भिक्खू असणाई दिज्जा गिहि अहव अन्नतित्थीणं । सो आणाअणवत्थं

कडसामाइउ होइ समण इव । तस्समजुत्तमदाणं चोदग सुण कारणं तत्थ
मिच्छत्तविराहणं पावे ॥ १ ॥ जुत्तमदाणमसीले
॥ २ ॥ कामी मघरंगणओ थूलपइण्णा से होइ दट्ठवा । छेदणभेदणकरणे उद्दिट्ठकडं पि सो भुंजे ॥ ३ ॥ पंच विसया कामेइ
त्ति कामी, सह गृहेण सगृहः, अङ्गना स्त्री सह अङ्गनया साङ्गनः । थूलपइण्णा देसविरत इति । वृक्षादिछेदने पृथिव्यादिभेदने
न प्रवृत्तः सामायिकभावादन्यत्र जं च उद्दिट्ठकडं तं कडसामाइओ वि भुंजइ । एवं सो सव्वविरओ न भवति । एएण कारणेण
तस्स न कप्पइ दाउं' । नि० भा० चू० उ० १५ । अत्र यत्सामायिके उद्दिष्टकृतभोग उक्तः स वस्त्रपट्टकाद्युद्दिश्येति वृद्धाः ।
अथाशनादीनिशब्दस्पष्टत्वेऽशनादिभोग एव घटते, उच्यते यद्यशनादिभोगस्तदा कथञ्चित्सामायिके स भविष्यति परं पोषध-
व्रते कथं घटते ? आहारादिनिषेधादेव । सामायिके चाहारग्रहणं गच्छाचरणया प्रायो न दृश्यतेऽतोऽत्र बहुश्रुताः प्रमाणम् ।
पर भुञ्जेशब्देन भोजनार्थः सामायिके कया रीत्या सङ्गतस्तच्चिन्त्यं, कायचिन्तादौ उद्दिष्टकृत इव भोगो घटतेऽपि ॥ ११ ॥

अतिहिसंविभागो नाम नायागयाणं कप्पणिज्जाणं अन्नपाणाईणं दव्वाणं देसकालसद्धासक्कारकमजुअं
पराए भत्तीए आयाणुग्गहबुद्धीए संजयाणं दाणं, अतिहिसंविभागस्स समणोवासएणं इमे पंच अइयारा
जाणियव्वा नंजहा—सच्चित्तनिक्खेवणया सच्चित्तपिहणया कालइक्कमे परववएसे मच्छरिया य १२ ॥ (सूत्रं)

भोजनार्थं भोजनकालागतोऽतिथिरुच्यते । तत्रात्मार्थं निष्पादिताहारस्य गृहिव्रतिनः साधुरेव मुख्योऽतिथिस्तस्य संवि-
भागो दानं अतिथिसंविभागः। संविभागशब्दात्पश्चात्कर्म्मादिदोषपरिहारो ज्ञेयः। नामशब्दोऽलङ्कारार्थः। न्यायागतानां न्यायो
द्विजक्षत्रियवैश्यादीनां स्ववृत्त्यनुष्ठानं तेनागतानां प्राप्तानां अस्तैन्येन व्यवहारशुद्ध्यागतानामित्यर्थः। कल्पनीयानामुद्गमादि-

दोषोज्झितानामित्यर्थः। अन्नपानादीनामादितो वस्त्रपात्रौषधभेषजादिग्रहः अनेन हिरण्यादिव्यवच्छेदः। देशकालश्रद्धासत्कारक्रमयुक्तम्। तत्र शाल्यादिनिष्पत्तिभाग् देशः, सुभिक्षादिः कालः, शुद्धचित्तपरिणामः श्रद्धा। अभ्युत्थानासनदानवन्दनानुव्रजनादिः सत्कारः, पाकस्य पेयादिपरिपाट्या प्रदानं क्रमः। यद्वोत्कृष्टानुत्कृष्टवस्तूनां परिपाटिः क्रमः। एभिर्देशादिभिर्युक्तम्। अनेन विपरीतक्रमव्यवच्छेदमाह। परया भक्त्या परया तत्त्वबुद्ध्या, तथात्मानुग्रहबुद्ध्या न तु यत्यनुग्रहबुद्ध्या यतयश्चात्मन्यनुग्रहपराः स्युः। संयतेभ्यो मूलोत्तरगुणसंपन्नेभ्यो दानम्। एत्थ सामायारी–सावएण पोसहं पारंतेण नियमा साहूण दाउं पारेयव्वं। अन्नया पुण अनियमो, दाउं वा पारेइ पारिए वा देइ, तम्हा पुव्वं साहूणं दायव्वं। कहं? जाहे देसकालो यदा प्रस्तावः ताहे अप्पणा सरीरस्स विभूसं काउं। परं विभूषा किमर्थमुक्ता? उच्यते, अलङ्कृतो धर्म्ममाचरेदिति व्यवहाररक्षायै, साहुपडिस्सयं गंतुं निमंतेइ भिक्खं गेण्हह त्ति। साधूणं का पडिवत्ती? साधूनां का प्रतिपत्तिर्युक्तिः? ताहे अन्नो पडलं अन्नो मुहणंतगं अन्नो भाणं पडिलेहेइ मा अंतराइयदोसो ठवियगदोसो य, अन्तरायदोषः स्थापनादोषश्च मा भवत इति साधवः पात्रकप्रतिलेखनां विभिन्नाः कुर्युः। सो जइ पढमाए पोरिसीए निमंतेइ अत्थि [1]नमोक्कारइतगा तो घेप्पइ, अह नत्थि न घेप्पइ, तं वहियव्वयं होइ। जइ घणं लग्गिज्जा ताहे घेप्पइ संचे(चि)क्खावे(वि)ज्जइ। जो वा उग्घाडपोरिसीए पारेइ पारणइत्तो अन्नो तस्स दिज्जइ। पच्छा तेण सावगेण समगं गम्मइ। संघाडगो वच्चइ एगो न वट्टइ पेसेउं साहुणो पुरओ सावगो मग्गओ घरं नेऊण आसणेण उवनिमंतिज्जन्ति। जइ निविट्ठा तो लट्ठयं। अहवा न निविस्सन्ति तहावि विणओ पउत्तो, ताहे भत्तं पाणं सयं चेव देइ। अहवा

१ 'णमोक्कारसहिताइतो' इति आव० हारि० वृत्तौ, 'नमोकारसित्ता' इति आव० चूर्णौ।

माणं धरेइ भत्ता देइ। अहवा ठियओ अच्छइ जाव दिठ्ठं, साहू वि सावसेसं दव्वं गेण्हन्ति पच्छाकम्मपरिहरणट्ठा, दाऊण वंदिउं विसज्जेइ अणुगच्छइ। पच्छा सयं भुंजइ। जं च किर साहूणो न दिन्नं तं सावगेण न भोत्तव्वं। जइ पुण साहू नत्थि ताहे देसकालवेलाए दिसालोओ कायव्वो। विसुद्धभावेणं चिंतेयव्वं। जइ साहवो होंता नित्थारिओ मि होंतो त्ति इत्यादि। अन्यार्थीनाराः। अथादित्सादानबुद्ध्या सचित्तेषु निक्षेपणं मायया १। तथा एवं सचित्तेन पिधानं स्थगनं सचित्तपिधानं २। एवं कालातिक्रमः। उचितो यो यतिभिक्षाकालस्तमतिक्रम्यानागतं वा निमन्त्र्य भुङ्क्ते ३। एवं साधोः पोषधोपवासपारण-काले भिक्षागमनस्य प्रकटमन्नादि पश्यतः श्राद्धो वक्ति परकीयमिदमन्नं नास्माकीयं तेन न ददे इति परस्य व्यपदेशः छलं परव्यपदेशः परं व्यपदिशति यद्वा अन्यस्य जीवतो मृतस्य वा पुण्यं भवत्विति ४। एवं मात्सर्यं इति याचितः कुप्यति सदपि न दत्ते तथा अन्योन्नति वैमनस्यं मात्सर्यं स्यात्तेन यदि द्रमकेण याचितेन दत्तं किमहं ततोऽपि न्यूनः ? इति मात्सर्याद्दत्ते। सकषायचित्तस्य वा दाने मात्सर्यम् ५। समाप्तं चतुर्थं शिक्षापदव्रतम् ॥ १२ ॥ श्राद्धधर्मं निगमयन्नाह

इत्थं पुण समणोवासगधम्मे पंचाणुव्वयाइं तिन्नि गुणव्वयाइं आवकहियाइं, चत्तारि सिक्खावयाइं इत्तरियाइं, एयस्स पुणो समणोवासगधम्मस्स मूलवत्थुं सम्मत्तं, तंजहा–तं निसग्गेण वा अभिगमेण वा पंचअइयारविसुद्धं अणुव्वयगुणव्वयाइं च अभिग्गहा अन्ने वि पडिमादओ विसेसकरणजोगा, अप-च्छिमा मारणंतिया संलेहणाझूसणाराहणया, इमीए समणोवासएणं इमे पञ्च अइयारा जाणियव्वा–इहलोगासंसप्पओगे परलोगासंसप्पओगे जीवियासंसप्पओगे मरणासंसप्पओगे कामभोगासंसप्प-

सागारमणागारं परिमाणकडं निरवसेसं ॥ १५५८ ॥

अनागतं पर्युषणादौ गुरुवैयावृत्त्यादेस्तपोऽन्तरायभावादर्वाक् तत्तपःकरणं अनागतम् १ । एवमतिक्रान्ते पर्वणि तपोऽतिक्रान्तम् २ । कोट्यौ अन्तौ मिलितौ समानौ यत्र तत्कोटीसहितं आद्यन्तयोश्चतुर्थादितुल्यप्रत्याख्यानमित्यर्थः ३ । नितरां यन्त्रितं नियन्त्रितं यथा अमुकदिने कारणेऽकारणे वा एतत्तपः कार्यमेव ४ । सहाकारैः साकारम् ५ । अविद्यमानाकारं अनाकारम् ६ । दत्त्यादिपरिमाणात् परिमाणकृतम् ७ । सर्वाहारत्यागरूपं निरवशेषम् ८ ॥ १५५८ ॥

संकेयं चेव अद्धाए पच्चक्खाणं तु दसविहं ।

सयमेवणुपालणियं दाणुवएसे जह समाही ॥ १५५९ ॥

केतं चिह्नं अङ्गुष्ठादि सह केतेन वर्तते इति सङ्केतम् ९ । 'अद्धाए'त्ति पौरुष्यादिकालमानम् १० । प्रत्याख्यानं दशविधं इदं स्वयमेवानुपालनीयं न तु प्राणातिपातादिप्रत्याख्यानवदन्यकारापणेऽनुमतौ वा निषेधः । दाने कृतोपवासस्यान्येषामाहारदाने उपदेशे अन्यदानोपदेशे च यथासमाधि स्वेच्छया करोतीत्यर्थः ॥ १५५९ ॥ दशविधप्रत्याख्यानं व्याख्याति

होही पज्जोसवणा मम य तया अन्तराइयं हुज्जा ।

गुरुवेयावच्चेणं तवस्सिगेलन्नयाए वा ॥ १५६० ॥

भविष्यति पर्युषणा उपलक्षणाच्चतुर्मासिकादावपीदं ज्ञेयम् । तत्र पर्युषणायां विकृष्टतपः कार्यम्, तत्र यदि सर्वविकृष्टं कर्तुं न शक्नोति तदापि जघन्यविकृष्टं अष्टमं करोति, एवं चतुर्मासे षष्ठं पाक्षिके उपवासः । तथाऽन्येष्वपि स्नात्ररथयात्रादिष्वपि यथाशक्त्या तपः कार्यम् । तदा पर्वे मम गुरुवैयावृत्त्येन तपस्विपारणेन स्वस्य ग्लानतया च अन्येन वा ग्रामगमनकार्यादिना श्वोपवासस्यान्तरायं भवति ॥ १५६० ॥

सो दाइ तवोकम्मं पडिवज्जे तं अणागए काले ।

एयं पच्चक्खाणं अणागयं होइ नायव्वं ॥ १५६१ ॥

स इदानीं अनागते काले तत्पर्युषणासम्बन्धि तपःकर्म्म प्रतिपद्यते तदनागते काले एतत्प्रत्याख्यानमनागतं ज्ञातव्यम् ॥ १५६१ ॥ अतिक्रान्तव्याख्यामाह

पज्जोसवणाइ तवं जो खलु न करेइ कारणज्जाए ।

गुरुवेयावच्चेणं तवस्सिगेलन्नयाए वा ॥ १५६२ ॥

पर्युषणायां यस्तपो न करोति कारणजाते सति तदेवाह गुर्वादिवैयावृत्त्येन तपस्विग्लानतयाऽन्तरायं च ॥ १५६२ ॥

सो दाइ तवोकम्मं पडिवज्जइ तं अइच्छिए काले ।

ओगे १३ ॥ (सूत्रम्)

पंचाणुव्रतानि त्रीणि गुणव्रतानि यावत्कथिकानि सकृद् गृहीत्वा यावज्जीवं पाल्यानि। शिक्षापदव्रतानीत्वराणि, शिक्षाऽभ्यासस्तस्याः पदानि स्थानानि तान्येव व्रतानि। तत्र प्रतिदिवसानुष्ठेये सामायिकदेशावकाशिके पुनः पुनरुच्चार्ये। अत्र सामायिकमपि देशावकाशिकवत्कालद्वयमेव कार्यं इति वृद्धाः। पोषधोपवासातिथिसंविभागौ तु प्रतिनियतदिवसानुष्ठेयौ न प्रतिदिवसाचरणीयौ। अत्र प्रतिनियतशब्देन पर्वदिने इति वृद्धाम्नायः। यत्त्वाहुनाऽष्टमेन पोषधादि कृतं तत्र द्वादशं पौषधव्रतं किं न घटते ? तस्य पर्वदिनानुष्ठानत्वात् श्रीविजयादिनां पोषधदृष्टान्तेन यद्वा त्रयोदश्यामुपवासं कृत्वाऽन्ते चतुर्दशीपञ्चदश्योः पोषधद्वयमिति, यद्वा नियमविशेषे वाऽष्टमतपसि पोषधशब्दः। अत्र यद्वचनविरुद्धं स्यात्तच्छ्रुतज्ञानं क्षमयामि। 'एयस्स०' एतस्य द्वादशविधस्य धर्मस्य मूलवस्तु मूलभूतं सम्यक्त्वं प्रशमसंवेगनिर्वेदानुकम्पास्तिकयस्वरूपम्। तन्निसर्गेण वाऽधिगमेन वा स्यात्तत्र निसर्गः स्वभावोऽधिगमो गुरोः शास्त्राद्वा यथार्थवस्तुज्ञानम्। यद्यपि मुख्यतः सम्यक्त्वं क्षयोपशमाज्जायते तथापि निसर्गाधिगमौ सहकारिणौ भवत एव। इदं च शङ्कादिपञ्चातीचाररहितं पाल्यमिति शेषः। तथाणुव्रतानि गुणव्रतानि निरतिचाराणि पाल्यानि। अभिग्रहा लोचकृतघृतदानाद्याः श्र(शु)द्धा भङ्गाद्यतिचाररहिताः पाल्याः, अन्ये च प्रतिमाद्या विशेषेण करणयोगाः पुण्यव्यापारा आदिशब्दादनित्यत्वाद्या भावनाः पाल्याः। तथाऽपश्चिममारणान्तिकी संलेखनाजोषणाराधनाऽतिचाररहिता सम्यक् पाल्या। तत्र पश्चिमैवापश्चिमा मरणमेवान्तो मरणान्तस्तत्र भवा मारणान्तिकी। संलिख्यन्ते कृशीक्रियन्तेऽनया देहकषायादीनि [इति] संलेखना तपोविशेषरूपा तस्या जोषणं सेवनं तस्याराधनाऽखण्डपालनं चः समुच्चये। एत्थ

सामायारी–आसेवियगिहिधम्मेण किल सावगेण पच्छा निक्खमियव्वं। एवं सावगधम्मो उज्झिओ होइ। न सक्कइ ताहे भत्तप-
चक्खाणकाले संथारसमणेण होयव्वं। अत्रेदं विचार्यते। यदि संस्तारदीक्षाप्यवश्यं श्राद्धैर्ग्राह्या इत्यस्ति आनन्दादिभिश्च सामग्र्यां
नात्ता, ततः केवलचरितानुवादमात्रेणैव न स्थेयं किन्तूक्तबलादपि विधेयम्। तेन ग्रन्थिं बद्ध्वा सामायिकवद्यत्पालयन्ति
मारग्घनियमं तत्र दोषो न घटते। 'इमीए' इत्यादि, इह मरणकाले इहलोकाशंसाप्रयोगः इहलोको मनुष्यलोकस्तस्मिन्नाशंसा-
ऽभिलाषस्तस्याः प्रयोगो यथा इह भवे महत्त्ववान् स्यामिति १। एवं परलोको देवलोकः २। जीविताशंसा मरणसमयेऽपि
पुस्तकाचनादिपूजाबहुपरिवारलोकश्लाघ्यत्वदर्शनादनशनिनोऽपि जीवितेच्छाकरणम् ३। मरणाशंसाप्रयोगोऽनशने न पूज्यत्वे
अनिष्टस्पर्शादिना शीघ्रं म्रियेऽहमिति चिन्तनम् ४। कामभोगाशंसा जन्मान्तरे चक्री स्यामित्यादि ५। व्याख्यातं दिग्व्र-
तादिदेशोत्तरगुणप्रत्याख्यानम्। सर्वोत्तरगुणप्रत्याख्यानमाह

पच्चक्खाणं उत्तरगुणेसु खमणाइयं अणेगविहं।
तेण य इहयं पगयं तं पि य इणमो दसविहं तु ॥ १५५७ ॥

प्रत्याख्यानं उत्तरगुणेषु उत्तरगुणविषयं प्रकरणात्साधूनामिदं क्षपणादि उपवासादि, तेनैवात्र सर्वोत्तरगुणप्रत्याख्यान-
प्रकारे प्रकृतमुपयोगः, तदपि चेदं दशविधं मूलभेदापेक्षया ॥ १५५७ ॥

अणागयमइक्कंतं कोडियसहिअं निअंटिअं चेवं।

सागारमणागारं परिमाणकडं निरवसेसं ॥ १५५८ ॥

अनागतं पर्युषणादौ गुरुवैयावृत्त्यादेस्तपोऽन्तरायभावादर्वाक् तत्तपःकरणं अनागतम् १ । एवमतिक्रान्ते पर्वणि तपोऽतिक्रान्तम् २ । कोट्यौ अन्तौ मिलितौ समानौ यत्र तत्कोटीसहितं आद्यन्तयोश्चतुर्थादितुल्यप्रत्याख्यानमित्यर्थः ३ । नितरां यन्त्रितं नियन्त्रितं यथा अमुकदिने कारणेऽकारणे वा एतत्तपः कार्यमेव ४ । सहाकारैः साकारम् ५ । अविद्यमानाकारं अनाकारम् ६ । दत्त्यादिपरिमाणात् परिमाणकृतम् ७ । सर्वाहारत्यागरूपं निरवशेषम् ८ ॥ १५५८ ॥

संकेयं चेव अद्धाए पच्चक्खाणं तु दसविहं ।
सयमेवणुपालणियं दाणुवएसे जह समाही ॥ १५५९ ॥

केतं चिह्नं अङ्गुष्ठादि सह केतेन वर्तते इति सङ्केतम् ९ । 'अद्धाए'त्ति पौरुष्यादिकालमानम् १० । प्रत्याख्यानं दशविधं इदं स्वयमेवानुपालनीयं न तु प्राणातिपातादिप्रत्याख्यानवदन्यकारापणेऽनुमतौ वा निषेधः । दाने कृतोपवासस्यान्येषामाहारदाने उपदेशे अन्यदानोपदेशे च यथासमाधि स्वेच्छया करोतीत्यर्थः ॥ १५५९ ॥ दशविधप्रत्याख्यानं व्याख्याति

होही पज्जोसवणा मम य तया अन्तराइयं हुज्जा ।
गुरुवेयावच्चेणं तवस्सिगेलन्नयाए वा ॥ १५६० ॥

भविष्यति पर्युषणा उपलक्षणाच्चतुर्मासकादावपीदं ज्ञेयम् । तत्र पर्युषणायां विकृष्टतपः कार्यम्, तत्र यदि सर्वविकृष्टं कर्तुं न शक्नोति तदापि जघन्यविकृष्टं अष्टमं करोति, एवं चतुर्मासे षष्ठं पाक्षिके उपवासः । तथाऽन्येष्वपि स्नात्ररथयात्रादिष्वपि यथाशक्त्या तपः कार्यम् । तदा पर्वे मम गुरुवैयावृत्त्येन तपस्विपारणेन स्वस्य ग्लानतया च अन्येन वा ग्रामगमनकार्यादिना नोपरामस्यान्तरायं भवति ॥ १५६० ॥

सो दाइ तवोकम्मं पडिवज्जे तं अणागए काले ।
एयं पच्चक्खाणं अणागयं होइ नायव्वं ॥ १५६१ ॥

स इदानीं अनागते काले तत्पर्युषणासम्बन्धि तपःकर्म्म प्रतिपद्यते तदनागते काले एतत्प्रत्याख्यानमनागतं ज्ञातव्यम् ॥ १५६१ ॥ अतिक्रान्तव्याख्यामाह

पज्जोसवणाइ तवं जो खलु न करेइ कारणज्जाए ।
गुरुवेयावच्चेणं तवस्सिगेलन्नयाए वा ॥ १५६२ ॥

पर्युषणायां यस्तपो न करोति कारणजाते सति तदेवाह गुर्वादिवैयावृत्त्येन तपस्विग्लानतयाऽन्तरायं च ॥ १५६२ ॥

सो दाइ तवोकम्मं पडिवज्जइ तं अइच्छिए काले ।

एयं पच्चक्खाणं अइकंतं होइ नायव्वं ॥ १५६३ ॥

'अइच्छिए' अतिक्रान्ते काले ॥ १५६३ ॥ तत्रानागतप्रत्याख्याने विधिः—पर्युषणायां गुरूणां गोचरवैयावृत्त्यं कार्यं तदा तेऽसहत्वादुपवासासहा अन्या वा काप्याज्ञप्तिः स्यात्, ग्रामान्तराद्वा किञ्चिदानेयं स्यात्, देहवैयावृत्तिर्वा । उपवासी तु गुरुवैयावृत्त्याद्यसहः । ततः क्षमः उपवासवैयावृत्त्ये कुर्यादन्यो वोपवासासहः कुर्यात्, यद्वान्यो विहर्ता नास्ति अस्ति वा परमलाभोऽज्ञो वा विधौ, ततः स एव पूर्वमुपवासं कृत्वा पर्युषणायां भुङ्क्ते, यद्वा तपस्वी क्षपकस्तस्य पर्युषणायां पारणं समेतं गोचराक्षमश्च । असहं तपस्विनं ज्ञात्वा पर्युषणायां पारापितः ततस्तपस्वी चेत् क्षमो मनागपि तदा आसन्नगृहेषु हिण्डते आसन्ने वा न गृहाणि योग्यं वा न लभ्यते ततः स एवेत्यादि प्राग्वत् । तथा ग्लानतां स्वस्य वेत्ति यथा तद्दिनेऽहं असहः स्यां, वैद्याद्वा वेत्ति, वैद्येनोक्तं अमुकदिनेऽगदं कुर्याः, यद्वा गण्डादिपीडाऽसहत्वं स्वस्य तदा वेत्ति, ततः प्राग्वत् । तथा कुलगणसंघाचार्यगच्छहेतून् वा पर्युषणायां वेत्ति । तेनानागतं प्रत्याख्याति । तदा च भुङ्क्ते, पर्युषणातपो निर्जरैव तस्य एवमनागतप्रत्याख्यानमप्येभिः कारणैर्ज्ञेयम् । कोटीसहितमाह—

पट्ठवणओ अ दिवसो पच्चक्खाणस्स निट्ठवणओ अ ।
जहियं समिंति दुन्नि वि तं भन्नइ कोडिसहियं तु ॥ १५६४ ॥

प्रस्थापकश्च तपःप्रारम्भकश्च दिवसः प्रत्याख्यानस्य निष्ठापकश्च समाप्तिदिवसश्च यत्र प्रत्याख्याने समेतः तुल्यप्रत्या-

ख्यानत्वेन मिलतः द्वावपि पर्यन्तौ तद्भण्यते कोटीसहितम् । यथा प्रातरावश्यकेऽभक्तार्थः कृतः ततो द्वितीयेऽह्न्यपि तं कुर्यादिदं द्वितीयोपवासस्य प्रस्थापनाऽऽद्यस्य तु निष्ठापनेति द्वौ कोणौ मिलितौ, एवं आयम्बिलनिव्वियएगासणएगट्ठाणाण वि । अष्टमादिषु उभयतः कोटिः यतो द्वितीयप्रत्याख्यानाहोरात्रान्त एवोपवासो मिलितः । आद्योपवासाहोरात्रान्त एव च द्वितीयं प्रत्याख्यानं मिलितमिति । यद्वोपवासान्ते आचामाम्लं पुनरुपवासाचामाम्ले इति, एवं एकासनादिष्वपि संयोगः । निर्वि-कल्पादिष्वपि प्रत्याख्यानेष्वपि सदृशेषु विसदृशेषु च संयोगः कार्यः ॥ १५६४ ॥ नियन्त्रितमाह—

मासे मासे अ तवो अमुगो अमुगे दिणंमि एवइओ । हट्ठेण गिलाणेण व कायव्वो जाव ऊसासो ॥ १५६५

मासे मासेऽमुकममुकं चतुर्थादितपः, एतावन्मात्रं संख्यया, अमुकदिवसे हृष्टेन नीरोगेण ग्लानेन वा कार्यम् यावदुच्छ्वासो यावदायुः ॥ १५६५ ॥

एयं पच्चक्खाणं नियंटियं धीरपुरिसपन्नत्तं ।
जं गिण्हंतऽणगारा अणिस्सि(म्भ)अप्पा अपडिबद्धा ॥ १५६६ ॥

नियन्त्रितं यद् गृह्णन्ति अनगारा अनिश्रितात्मानोऽनिदाना बुद्धा अप्रतिबद्धा देहक्षेत्रादिषु ॥ १५६६ ॥

चउदसपुव्वीजिणकप्पिएसु पढमंमि चेव संघयणे । एयं विच्छिन्नं खलु थेरा वि तया करेंसी य ॥ १५६७

चतुर्दशपूर्विजिनकल्पिकेषु प्रथमे एव वज्रऋषभनाराचसंहनने एतद् व्युच्छिन्नम् । स्थविरा अपिशब्दादन्येऽपि तदाऽकार्षुः ॥ १५६७ ॥ साकारमाह—

मयहरगागारेहिं अन्नत्थ वि कारणंमि जायंमि । जो भत्तपरिच्चायं करेइ सागारकडमेयं ॥ १५६८ ॥

अयं महानयं महानन‌योरतिशयेन महान् महत्तरा आकाराः प्रकारास्तैर्महत्तराकारैः प्रभूतदशाकारख्यापनार्थं बहुवचनम् । अतो महत्तराकारैर्हेतुभूतैरन्यस्मिंश्चानाभोगादौ कारणे जाते सति भुजिक्रियां करिष्ये अहमित्येवं यो भक्तपरित्यागं करोति, साकारकृतमेतत् । यथा साधुनाऽभक्तार्थः प्रत्याख्यातः । गुरुभिरूचेऽमुके ग्रामे गम्यं स ऊचे ममोपवासः । ततश्चेत्क्षमस्तदा याति अशक्तौ अन्यो याति । नास्त्यन्यस्तत्कार्याक्षमो वास्ति ततो गुरुस्तं प्रेषयति तस्य भुञ्जानस्यानभिलाषस्योपवासनिर्जरा स्यात् गुरुनियोगेन, एवं पारिष्ठापनिकाकारोऽपि युक्त्या ज्ञेयः । एवं ग्लानकुलसंघकार्येष्वपि ॥१५६८॥ अनाकारमाह—

निज्जायकारणंमी मयहरगा नो करंति आगारं ।
कंतारवित्तिदुब्भिक्खयाइ एयं निरागारं ॥ १५६९ ॥

निश्चयेन यातमपगतं कारणं एकवारेणैव दत्ताहारैः यस्मिन्नसौ निर्यातकारणस्तस्मिन् साधोर्महत्तराः प्रयोजनविशेषास्तत्फलाभावात् आकारविशेषं न कुर्वन्ति । कान्तारवृत्तौ भिल्लपल्ल्यादिकान्तारपतने दुर्भिक्षतायां दुर्भिक्षभावे चशब्दा-

दुर्दैनाहारनिषेधिते च अत्र यत्क्रियते एतत् प्रत्याख्यानं निराकारम्, भावार्थस्तु भोज्यलाभामावादनाकारं प्रत्याख्याति यद्वा न जीवामीति ज्ञात्वाऽनाकारं प्रत्याख्याति। तत्राप्यनाभोगसहसाकारौ भवत एव। कदाचित् शलाकां काष्ठमङ्गुलि वा मुखे क्षिपेदनाभोगेन सहसा वा ॥ १५६९ ॥ परिमाणकृतमाह–

दत्तीहि उ कवलेहि व घरेहिं भिक्खाहिं अहव दवेहिं ।
जो भत्तपरिच्चायं करेइ परिमाणकडमेयं ॥ १५७० ॥

दत्तिभिरेकवारेणैव दत्ताहारैर्वा कवलैर्वा गृहैर्वा भिक्षाभिः संसृष्टादिभिरथवा द्रव्यैरोदनादिभिराहाराय सप्रमाणैर्या भक्तत्यागं कुर्यात्, तत्र दत्तिरेकवारेऽन्नपातः, कृतपरिमाणं प्रत्याख्यानमेतत् ॥ १५७० ॥ निरवशेषमाह–

सव्वं असणं सव्वं पाणगं सव्वखज्जभुज्जविहं ।
वोसिरइ सव्वभावेण एयं भणियं निरवसेसं ॥ १५७१॥

अशनं आर्द्रकमांसमप्तदशधान्यानि, एवं पानं खण्डपानादि, खादिमं फलादि, स्वादिमं दन्तपावनमध्वादि। सर्व-खाद्यभोज्यविधी खाद्यं इक्षुखण्डादि भोज्यं सर्वतः स्वाद्यं तयोर्विधी प्रकारौ सर्वप्रकारेण सर्वतो व्युत्सृजति। 'एवं' निरवशेषं निराकारं पार्यतेऽपि, इदं तु न पार्यते इति विशेषः ॥ १५७१ ॥ संकेतमाह–

अंगुट्ठमुट्ठिगंठीघरसेउस्सासथिबुगजोइक्खे ।
भणियं संकेयमेयं धीरेहिं अणंतनाणीहिं ॥ १५७२ ॥

अङ्गुष्ठमुष्टिग्रन्थिगृहस्वेदोच्छ्वासस्तिबुकज्योतिष्कान् चिह्नं कृत्वा यत्क्रियते प्रत्याख्यानम् । अयमर्थः पूर्णेऽपि पौरुष्यादिप्रत्याख्याने साधुः श्राद्धो वा यावन्न भुङ्क्ते तावत् किञ्चिच्चिह्नमभिगृह्णाति न युज्यतेऽप्रत्याख्यानिनः स्थातुं इति । ततोऽङ्गुष्टं यावन्न मुञ्चामि ग्रन्थिं यावन्न छोटयामि यावद् गृहं न विशामि यावत् स्वेदो न शुष्यति यावदेतावन्त उच्छ्वासाः पानीयमञ्चिकायां यावदेतावन्तः स्तिबुका बिन्दवोऽवश्यायपृषतो वा यावज्ज्योतिष्कशब्देन दीपो गृह्यते ततो यावदेष दीपो ज्वलति तावदहं न भोक्ष्ये । एतत्तु प्रत्याख्यानं संकेतं भणितं धीरम(रैर)नन्तज्ञानिभिः । न केवलं भक्तेऽन्येष्वप्यभिग्रहविशेषेषु संकेतं स्यात् । तेन सामायिकतुलनया ग्रन्थिसहितमपि प्रत्याख्याति श्राद्धः ॥ १५७२ ॥ अद्धामाह—

अद्धा पच्चक्खाणं जं तं कालप्पमाणछेएणं ।
पुरिमड्ढपोरिसीए मुहुत्तमासद्धमासेहिं ॥ १५७३ ॥

अद्धा काले प्रत्याख्यानं यत् तत् अद्धाप्रत्याख्यानम्, तत् कालप्रमाणछेदेन स्यात् पुरिमार्द्धपौरुषीभ्यां पश्चिमार्द्धेन च तथा मुहूर्त्तं नमस्कारसहितम् । एवं एकाशनोपवासदिवसद्वयादि यावत् मासार्द्धमासैः षण्मासैः स्यात् ॥ १५७३ ॥ अथ निगमयति—

भणियं दसविहमेयं पच्चक्खाणं गुरूवएसेणं ।
कयपच्चक्खाणविहिं इत्तो वुच्छं समासेणं ॥ १५७४ ॥
आह जइ जीवघाए पच्चक्खाए न कारए अन्नं ।
भंगभयाऽसणदाणे धुव कारवणे य नणु दोसे ॥ १५७५ ॥

कृतं प्रत्याख्यानं येन स तथाविधस्तस्य विधिं इतः समासेन संक्षेपेण वक्ष्ये ॥ १५७४ ॥ 'आह' अत्र पर आह यथा जीवघाते प्राणातिपाते प्रत्याख्याते सति असौ परेण जीवघातं न कारयति प्रत्याख्यानभङ्गभयात्, एवं कृतप्रत्याख्यान-स्याशनादिदाने ध्रुवं कारणादि जायते इति ननु दोषो लगति प्रत्याख्यानभङ्गरूपः ॥ १५७५ ॥ अतः

नो कयपच्चक्खाणो आयरियाईण दिज्ज असणाई ।
न य विरईपालणाओ वेयावच्चं पहाणयरं ॥ १५७६ ॥
नो तिविहं तिविहेणं पच्चक्खइ अन्नदाणकारवणं ।
सुद्धस्स तओ मुणिणो न होइ तब्भंगहेउत्ति ॥ १५७७ ॥

कृतप्रत्याख्यानः कृतोपवास आचार्यादिभ्योऽशनादि न दद्यात् । न च विरतिपालनाद्वैयावृत्त्यं गोचरचर्या प्रधानतरं

स्यात् ॥ १५७६ ॥ गुरुराह 'नो०' त्रिविधं करणकारणानुमतिरूपं त्रिविधेन मनोवाकायेन योगेन न प्रत्याख्याति आहारविषये तेन अन्यदानरूपं कारणं शुद्धस्य आशंसारहितस्य मुनेस्तद्भङ्गहेतुः प्रत्याख्यानभङ्गहेतुर्न स्यात् यस्तु लौल्यादन्यस्मै दत्ते मया न भुक्तं एष भुङ्क्ते, तस्य प्रमाददोषो लगति ॥ १५७७ ॥ किञ्च—

सयमेवणुपालणियं दाणुवएसो य नेह पडिसिद्धो ।
ता दिज्ज उवइसिज्ज व जहा समाहीइ अन्नेसिं ॥ १५७८ ॥

स्वयमेव प्रत्याख्यानं अनुपालनीयं इति निर्युक्तिकारेणोक्तम् । शक्तौ आत्मनाऽऽनीय दानं अशक्तौ यतीनां श्राद्धकुलादिकथनं तौ द्वौ इह न प्रतिषिद्धौ । तस्माद्द्यादुपदिशेद्वा यथासमाधिनाऽन्येभ्यो बालादिभ्यः ॥ १५७८ ॥ अमुमेवार्थमाह—

कयपच्चक्खाणो वि य आयरियगिलाणबालवुड्ढाणं ।
दिज्जासणाइ संते लाभे कयवीरियायारो ॥ १५७९ ॥

लाभे सति कृतवीर्याचारोऽशनादि दद्यात् । सत्यां शक्तौ अन्यो न प्रेष्यः वैयावृत्त्यं स्वयं कार्यम् । 'दाणे 'त्ति गतम्, उवदिसिज्ज वाऽलाभे सति ॥ १५७९ ॥ आह भाष्यकृत्

संविग्गअण्णसंभोइयाण देसेज्ज सड्ढगकुलाइं ।
अतरंतो वा संभोइयाण देज्जा जहसमाही ॥ २४७ ॥

श्रुतां दृष्टां वा दर्शयेत् नानीय दद्यादित्यर्थः। संग्निान्यसाम्भोगिकानां तूपदिशेत् यथैतानि श्राद्धकुलानि संखडिं च श्रुतां दृष्टां वा दर्शयेत् नानीय दद्यादित्यर्थः। सति सामर्थ्ये साम्भोगिकानां एकमण्डलीकानां ज्ञातेभ्योऽज्ञातेभ्यो अतरमशक्नुवन् सांभोगिकानामपि दिशेत् न दोषः। यथानमाधिर्नाम यथा यथा साधूनामात्मनो वा वा कुलेभ्यः संखड्या वानीय लब्धिमान् स्वयं दद्यात्। 'उवदेसो'त्ति गतम्, 'समाहि'त्ति गतम्। प्रत्याख्यानशुद्धिमाह समाधिः स्यात्तथा प्रयतितव्यम्। अक्षमस्यान्यमण्डलीसत्कस्याप्यानीय देयम्।

सोही पच्चक्खाणस्स छविहा समणसमयकेऊहिं।
पन्नत्ता तित्थयरेहिं तमहं वुच्छं समासेणं ॥ २४८ ॥

श्रमणसमयकेतुभिः साधुसिद्धान्तध्वजरूपैरर्हद्भिः प्रज्ञप्ता। यथा ध्वजः सर्वोच्चस्तथाऽर्हल्लोकोत्तरः। षड्विधत्वमेवाह

सा पुण सद्दहणा जाणणा य विणयाणुभासणा चेव।
अणुपालणा विसोही भावविसोही भवे छट्ठा ॥ १५८० ॥

सा शुद्धिरेवं षड्विधा श्रद्धानशुद्धिः १ जाननाशुद्धिः २ विनयशुद्धिः ३ अनुभाषणाशुद्धिः ४ अनुपालनाशुद्धिः ५ भावशुद्धिः ६ ॥ १५८० ॥ भाष्यम्, श्रद्धानशुद्धिमाह—

पच्चक्खाणं सवन्नुदेसिअं जं जहिं जया काले।
तं जो सद्दहइ नरो तं जाणसु सद्दहणसुद्धं ॥ २४९ ॥

पञ्च महाव्रतानि द्वादशधा श्राद्धधर्म्मः दशधोत्तरगुणप्रत्याख्यानमिति सप्तविंशतिः 'यत्' सप्तविंशति विधस्यान्यतमत् प्रत्याख्यानं 'यत्र' जिनकल्पादौ चतुर्यामादौ श्राद्धधर्मे वा 'यदा' सुभिक्षादौ दिवा रात्रौ वा पूर्वाह्णेऽपराह्णे वा 'काले' इति मरणे कर्त्तव्यं स्यात्। तत्र सप्तविंशतिभेदा एवं पञ्चविधं साधुमूलगुणप्रत्याख्यानं दशविधमुक्तमुत्तरगुणप्रत्याख्यानं द्वादशधा श्राद्धप्रत्याख्यानं चेति तद्यो नरः श्रद्धत्ते द्वा० १ ॥ २४९ ॥

पच्चक्खाणं जाणइ कप्पे जं जंमि होइ कायवं ।
मूलगुणे उत्तरगुणे तं जाणसु जाणणासुद्धं ॥ २५० ॥

यस्मिन् कल्पे चतुर्यामपञ्चयामरूपस्थितिकल्पे जिनकल्पादिके वा मूलोत्तरगुणविषयं कर्त्तव्यं स्यात् द्वा० २ ॥ २५० ॥

किइकम्मस्स विसोही पउंजई जो अहीणमइरित्तं ।
मणवयणकायगुत्तो तं जाणसु विणयओ सुद्धं ॥ २५१ ॥

विनयतो विनये(येन) शुद्धं प्रत्याख्यानकाले कृतिकर्मणो वन्दनस्य विशुद्धिं निरवद्यकरणक्रियां अन्यूनातिरिक्तां द्वा० ३ ।

अणुभासइ गुरुवयणं अक्खरपयवंजणेहिं परिसुद्धं ।
पंजलिउडो अभिमुहो तं जाणणुभासणासुद्धं ॥ २५२ ॥

कृतकृतिकर्मा प्राञ्जलिपुटो योजितहस्तोऽभिमुखः प्रत्याख्यानं कुर्वन्ननुभाषते गुरुवचनं लघुतरेण शब्देन भणतीत्यर्थः

अक्षरपदव्यञ्जनैः परिशुद्धम्। नवरं गुरुः पच्चक्खाइ वोसिरइ त्ति वक्ति। प्रत्याख्याता पच्चक्खामि वोसिरामि त्ति, शेषं सदृशमेव द्वा० ४ ॥ २५२ ॥

कंतारे दुब्भिक्खे आयंके वा महई समुप्पन्ने ।
जं पालियं न भग्गं तं जाणणुपालणासुद्धं ॥ २५३ ॥

कान्तारेऽरण्ये महत्यातङ्के रोगे वा यत् पालितं न भग्नम्, अत्र कान्तारादिष्वपि द्विचत्वारिंशद्भिक्षादोषान्न भनक्तीति भावः। तथापवादे यतनया सेवयाप्यभग्नमेवाऽन्यथापवादच्छेदः द्वा० ५॥ २५३ ॥

रागेण व दोसेण व परिणामेण व न दूसियं जं तु ।
तं खलु पच्चक्खाणं भावविसुद्धं मुणेयव्वं ॥ २५४ ॥

रागेण गुनादिमोहेन द्वेषेण क्रोधादिना यद्वा रागेण स्वपूजाहेतोः द्वेषेण परेषां अपूजाहेतोः तथा परिणामेन इहलोकनिर्गाढादिना कीर्त्यर्थिन्नपानगृहवस्तुशय्यादिहेतुना वा स्तम्भादिना वा वक्ष्यमाणेन न दूषितं यत् तत् भावशुद्धं प्रत्याख्यानं द्वा० ६ ॥ २५४ ॥

एएहिं छहिं ठाणेहिं पच्चक्खाणं न दूसियं जं तु ।
तं सुद्धं नायव्वं तप्पडिवक्खे असुद्धं तु ॥ २५५ ॥

षड्भिः स्थानकैः श्रद्धानादिभिः पालितैः प्रत्याख्यानं न दूषितं यदेव तच्छुद्धम्, तत्प्रतिपक्षेऽश्रद्धानादौ अशुद्धम् ॥ २५५ ॥ परिणाममाह—

थंभा कोहा अणाभोगा अणापुच्छा असंतई ।
परिणामओ असुद्धो अवाउ जम्हा विउ पमाणं ॥ २५६ ॥

स्तम्भाद्गर्वात् स्वगौरवार्थं १, क्रोधात् वृद्धनिर्भर्त्सनादेः २, अनाभोगाद्विस्मृतेः प्रत्याख्यानमज्ञात्वा वा भुङ्क्ते भोजनादनु स्मृतं प्रत्याख्यानं तेन भग्नं ३, अनापृच्छया स्वेच्छया गुर्वनुज्ञां विना भुङ्क्ते, चेत्प्रक्ष्यामि तदा वक्ष्यन्ति उपवासस्त्वया कृत इति ४, असंततिरसम्पत्तिस्तया यथात्र किञ्चिन्नास्ति ततो वरं प्रत्याख्यानम् ५, तथा इहलोकाद्यर्थं परिणामतोऽशुद्धं ६, एवं न कल्पते । तथाऽपायान्निष्कासनादिभिर्यो यत्कुरुते तदप्यसाधु तस्माद्विद्वान् क्रियायुक्तः प्रमाणम् । स जानन्नन्यथा न करोति तस्य शुद्धं स्यादित्यर्थः ॥ २५६ ॥ इयता 'पच्चक्खाणं पच्चक्खाओ' इत्याद्यगाथायाः प्रत्याख्यानपदं व्याख्यातं अत्राऽन्तरेऽध्ययनशब्दः प्राग्वत् । सूत्रालापकनिष्पन्ने निक्षेपे सूत्रम्—सूरे उग्गए नमोक्कारसहियमित्यादि यावत् सहसागारेणं वोसिरइ—

सूरे उग्गए नमोक्कारसहियं पच्चक्खाइ चउव्विहं पि आहारं असणं पाणं खाइमं साइमं, अण्णत्थऽणाभोगेणं सहसागारेणं वोसिरइ ॥ (सूत्रम्)

सूर्ये उद्गते नमस्कारसहितं मुहूर्त्तादिना नमस्कारकथनादर्वाक् प्रत्याख्याति । चतुर्विधमप्याहारम् । 'अश्' भोजने, अश्यते इत्यशनं मण्डकाद्रकादि (मण्डकौदनादि) । पीयते इति पानं जलादि । 'खाद' भक्षणे, खाद्यते इति खादिमं

इति स्वादिमं गुडदन्तपावनसंमुखशक्यादि (गुडताम्बूलपुगफलादि)।
फलमुखमक्षिकादि । स्वाद आस्वादने स्व(स्वा)द्यते इति स्वादिमं ... अनाभोगसहसाकारौ मुक्त्वाऽन्यत्र
पर अनाभोगात् अत्यन्तविस्मृत्या अन्यत्र सहसाकारः सहसाऽजानतो मुखक्षेपस्तस्मादन्यत्र । अनाभोगसहसाकारौ मुक्त्वाऽन्यत्र
चतुराहारं प्रत्याख्यातीत्यर्थः, एवं व्युत्सृजति चतुराहारान् । अत्र सूत्रस्पर्शिनिर्युक्तिः

असणं पाणगं चेव खाइमं साइमं तहा ।
एसो आहारविही चउविहो होइ नायव्वो ॥ १५८१ ॥

आहारविधिराहारप्रकारः ॥ १५८१ ॥ निरुक्तिमाह—

आसुं खुहं समेई असणं पाणाणुवग्गहे पाणं ।
खे माइ खाइमं ति य साएइ गुणे तओ साई ॥ १५८२ ॥

आशु शीघ्रं क्षुधं शमयतीत्यशनं १ । प्राणानामिन्द्रियादीनामुपग्रहे उपकारे यद्वर्तते तत्पानं, खमित्याऽऽस्याकाशं तत्र मातीति खादिमं । स्वादयति गुणान् मरसाहारान् जारयति स्वादयति संयमं भक्षते वा तत्स्वादिमं सर्वत्र निपातात् सिद्धम् ॥ १५८२ ॥ चालनामाह—

सव्वो वि य आहारो असणं सव्वो वि वुच्चई पाणं ।
सव्वो वि खाइमं ति य सव्वो वि य साइमं होई ॥ १५८३ ॥

यद्यनन्तरोक्तपदार्थापेक्षयाऽशनादीनि स्युस्तदा सर्वोऽपि चतुर्द्धाप्याहारोऽशनं सर्वोऽपि वोच्यते पानं इत्यादि, कथं ? अन्वर्थैक्यात्, यतः यथैवाशनं क्षुधं शमयत्येवं पानं क्षीरपानाद्यपि क्षुधं शमयति । यथा पानं प्राणानुग्रहे वर्त्तत एवमशनादीन्यपि । तस्मादयुक्त एवं भेदः ॥ १५८३ ॥ अथ प्रत्यवस्थानम्, गुरुराह–यद्यप्येतदेवं तथापि रूढितो नीतितः प्रयोजनं च संयमोपकारकमस्त्येवं कल्पनयाऽन्यथा दोषस्तथा चाह–

जइ असणमेव सव्वं पाणग अविवज्जणंमि सेसाणं ।
हवइ य सेसविवेगो तेण विहत्ताणि चउरो वि ॥ १५८४ ॥

यद्यन्वर्थाश्रयादशनमेव सर्वमाहारजातं गृह्यते ततः शेषाणां लोकरूढानां पानकादीनां अविवर्जनं स्यात्, भवति च शेषविवेकोऽस्ति च शेषाहारभेदपरित्यागो न्यायोपपन्नत्वात् । स चेह विदुषां सम्भवति । तेन विभक्तानि चत्वार्यप्यशनादीनि ॥ १५८४ ॥ एवं तु सामान्यविशेषभेदनिरूपण सुखज्ञेयं स्यात् सुखश्रद्धेयं च स्यात् । अन्यथा द्विविधं त्रिविधं चतुर्विधमप्याहारप्रत्याख्यानं न घटते, तदाह

असणं पाणगं चेव खाइमं साइमं तहा ।
एवं परूवियंमी सद्दहिउं जे सुहं होइ ॥ १५८५ ॥

श्रद्धातुं 'जे' पादपूर्त्यै, सुखं स्यात् । उपलक्षणाद्दीयते पाल्यते च सुखम् ॥ १५८५ ॥ आह मनसाऽन्यथा चिन्तिते

प्रत्याख्याने त्रिविधस्य पौरुष्या वा प्रत्याख्यानं करोमीति वागन्यथा निर्गता चतुर्विधस्य पुरिमार्द्धस्येति, गुरुणापि तथैव दत्तमत्र कः प्रमाणम् ? उच्यते शिष्यस्य मनोगतो भाव इति, यतः

अन्नत्थ निवडिए वंजणंमि जो खलु मणोगओ भावो ।
तं खलु पच्चक्खाणं न पमाणं वंजणच्छलणा ॥ १५८६ ॥

अन्यत्र इति द्विविधं प्रत्याख्यामीति स्थाने त्रिविधं चतुर्विधं वा प्रत्याख्यामि इति व्यञ्जने शब्दे निपतिते सति यः खलु मनोगतो भावः प्रत्याख्यापयितुरधिकृतसंयमयोगाक्षिप्तचेतसो न तु प्रमादात् तत् खलु प्रत्याख्यानं प्रमाणम्। एतेनान्तरालस्थसूक्ष्मनिरीक्षानिषेधमाह । निश्चिताशयस्यैव प्रामाण्याधिकृतत्वात् व्यञ्जनं शिष्याचार्यवचनं न प्रमाणम्, यतः छलनाभो व्यञ्जनरूपा ॥ १५८६ ॥ प्रत्याख्यानपालनमाह—

फासियं पालियं चेव सोहियं तीरियं तहा ।
किट्टिअमाराहिअं चेव एरिसयंमी पयइयव्वं ॥ १५८७ ॥

स्पृष्टं प्रत्याख्यानग्रहणकाले विधिना प्राप्तं १ । पालितं पुनः पुनरुपयोगप्रतिजागरणेन रक्षितं २ । शोभितं गुर्वादिप्रदानशेषभोजनासेवनेन ३ । तीरितं पूर्णेऽप्यवधौ यत्किञ्चित्कालावस्थानेन ४ । कीर्त्तितं भोजनवेलायाममुकं प्रत्याख्यानं पूर्णमित्युच्चारणेन ५ । आराधितमेभिरेव कारणैः सम्पूर्णं कृतं ६ । ईदृशि प्रत्याख्याने प्रयतितव्यम् । अत्र क्षेपकगाथा ' उचिए

काले विहिणा जं पत्तं फासियं ति तं (फासियं तयं) भणियं १ । तं पालियं जमसयं (तह पालियं च असइं) सम्मं उवओगपडियरियं २ ॥ १ ॥ गुरुदत्तसेसभोयणसेवणयाए विसोहियं (य सोहियं) ३ जाण । पुण्णे वि थेवकालावथा(त्था)णा तीरियं ४ होइ ॥ २ ॥ भोयणकाले अमुगं पच्चक्खायं ति भुंजओ किंत्तियं ५ । आराहियं पयारेहिं सम्ममेएहिं निट्ठिव(ट्ठवि)यं ६ ॥ ३ ॥ निष्ठापितं पूर्णीकृतं ॥ १५८७ ॥ प्रत्याख्यानगुणाः तथा विस्मृत्या सहसा वा नमस्कारेऽकृते मुखे क्षिप्तं स्यात्, स्मृते यत् मुखे क्षिप्तं स्यात् स्मृते यत् मुखे तत् खेलमल्लके यद् हस्ते तत्पात्रे मुक्त्वा नमस्कारं कृत्वा भुङ्क्ते एवं न भग्नम् । यत एवमप्याहारान्निवृत्त इति ।

पच्चक्खाणंमि कए आसवदाराइं हुन्ति पिहियाइं ।
आसववुच्छेएणं तण्हावुच्छेअणं होइ ॥ १५८८ ॥

प्रत्याख्याने कृते आश्रवद्वाराणि कर्मागमद्वाराणि पिहितानि स्युः, आश्रवव्युच्छेदनं स्यात् । तृष्णा विषयेच्छा ।

तण्हावोच्छेदेण य अउलोवसमो भवे मणुस्साणं ।
अउलोवसमेण पुणो पच्चक्खाणं हवइ सुद्धं ॥ १५८९ ॥

अतुलोपशमो मध्यस्थः भावः स्यात् ॥ १५८९ ॥

तत्तो चरित्तधम्मो कम्मविवेगो तओ अपुव्वं तु।
तत्तो केवलनाणं तओ अ मुक्खो सयासुक्खो ॥ १५९० ॥

ततः प्रत्याख्यानात् शुद्धचारित्रधर्म्मः स्फुरति। ततः कर्मविवेकः कर्मनिर्जरा। ततः क्रमेणापूर्वकरणं। छद्मस्थाऽध्यावपूर्वगुणाध्यवसायः। ततः श्रेणिक्रमेण केवलज्ञानं। ततश्च मोक्षः सदासौख्यः ॥ १५९० ॥ इदं च प्रत्याख्यानं दशविधं स्याद्याकारैः सह गृह्यते पाल्यते च, तदाह–

नमोक्कारपोरिसीए पुरिमड्ढेगासणेगठाणे य ।
आयंबिल अभत्तट्ठे चरमे य अभिग्गहे विगई ॥ १५९१ ॥

नमस्कारसहिते १ पौरुष्यां २ पुरिमार्द्धे ३ एकाशने ४ एकस्थाने ४ च ५ आचाम्ले ६ अभक्तार्थे ७ चरमे च ८ अभिग्रहे ९ विकृतौ १० यथासङ्ख्यमेते आकाराः ॥ १५११ ॥

दो छच्च सत्त अट्ठ सत्तट्ठ य पंच छच्च पाणंमि ।
चउ पंच अट्ठ नव य पत्तेयं पिंडए नवए ॥ १५९२ ॥

द्वौ १ षट् २ सप्त ३ अष्टौ ४ सप्त ५ अष्टौ ६ पञ्च ७ एते नमस्कारादिषु सप्तप्रत्याख्यानेषु क्रमेण ज्ञेयाः, पानके च

षट्, सामान्याभिग्रहे च चत्वारः पञ्च वा, निर्विकृतौ विकृतौ च अष्ट नव वा । तत्र निर्विकृतिर्द्विधा लेपाक्तं अलेपाक्तं च । अलेपाक्तनिर्विकृतौ द्रवविकृतिप्रत्याख्यानेन 'उक्खित्तविवेगेणं'ति पदं नोच्चार्यते अतोऽष्ट नव वेत्याकाराः । प्रत्येकमेवमाकारा ज्ञेयाः । पिंडके समूहवचने च नवैव आकाराः कथ्यन्ते । यथा सामान्याभिग्रहे ४, 'अवाउडत्तं' पच्चक्खामीत्यभिग्रहे ५ द्वयोर्मीलने ९ । समूहवचने निर्विकृतौ विकृतौ च नवेति कथनं विशेषव्याख्या वाग्रे तथाकारेत्याद्याऽन्यग्रन्थासंमतपिण्डको द्रवविकृतिरूपः नवको नवाकारवान् स्यादित्यर्थः । पिण्डकः समूहो नवकः नवसङ्ख्याक इति । जीवाः त्रयोदशक्रियास्थान-वर्तित्वात् त्रयोदशभेदाः एवं द्वाविंशतिसङ्ख्या जाता, एतावन्तः सर्वे आकाराः स्युः । यथा अन्नत्थणाभोगेणं ४ चत्वारः आकाराः, पच्छन्नकालेणं ३ त्रय आकाराः, लेवालेवेणंमुख्याः ५ पञ्चाकाराः, सागारियागारेणंमुख्याः ३ त्रय आकाराः, तथा चोलपट्टागारेणं १ अधिकः, लेवाडेणवामुख्याः ६ षट् आकाराः, एवं सर्वे प्रत्याख्यानाकाराः २२ जायन्ते । अत्र लघुवृत्तिव्याख्या नवकेति ९ आकारेत्याद्यान्यग्रन्थासंमतौ च मूलवृत्त्यादीनां च ॥ १५९२ ॥ व्यक्त्याह

दोच्चेव नमुक्कारे आगारा छच्च पोरिसीए उ ।
सत्तेव य पुरिमड्ढे एगासणगंमि अट्ठेव ॥ १५९३ ॥
सत्तेगट्ठाणस्स उ अट्ठेवायंबिलंमि आगारा ।
पंचेव अभत्तट्ठे छप्पाणे चरिमि चत्तारि ॥ १५९४ ॥

पंच चउरो अभिग्गहि निव्वीए अट्ठ नव य आगारा।
अप्पाउराण पंच उ हवन्ति सेसेसु चत्तारि ॥ १५९५ ॥

सूरे उग्गए नमोका० अन्नत्थणाभोगेणं सहसागारेणं

आकारः प्रत्याख्यानापवादहेतुः। द्वावेवाकारौ नमस्कारसहिते यथा 'सूरे उग्गए नमोका० अन्नत्थणाभोगेणं सहसागारेणं' प्रत्याख्यामि त्यजामि स्वीकुर्वे २ इति। व्याख्या सूर्ये उद्गते सति नमस्कारसहितमिति नमस्कारभणनोपलक्षितकालसहितं प्रत्याख्यामि त्यजामि स्वीकुर्वे चतुर्विधमप्याहारं शेषं प्राग्वत्। इदं चतुर्विधाहारस्यैव। मुहूर्त्तात्परतो भोजनकाले वा नमस्कारोच्चारेण 'मत्थएण वंदामो खमासमणो णमोक्कारं पारेमि त्ति' पार्यतेऽन्यथा सूर्यास्तमनेऽपि न इति वृद्धाः। पौरुषी द्विविधाद्याहाराऽपि स्यादिति वृद्धाः तस्यां पट्। इह सूत्रं 'पोरिसिं पच्चक्खाइ उग्गए सूरे' इत्यादि—

पोरिसिं पच्चक्खाइ उग्गए सूरे चउव्विहं पि आहारं असणं पाणं खाइमं साइमं अण्णत्थऽणाभोगेणं सहसाकारेणं पच्छन्नेणं कालेणं दिसामोहेणं साहुवयणेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि (सूत्रम्) ॥

दिनचतुर्भागमानकालेन पुरुषप्रमाणच्छायया निवृत्ताऽद्धा पौरुषी उच्यते, तां यावत् चतुर्विधाहारं प्रत्याख्यामि अन्यत्राभोगेन सहसाकारेणेति प्राग्वत्। तथा 'पच्छन्नेणं कालेणं' रजोवृष्ट्यादिना सूर्ये स्थगिते प्रच्छन्नेन कालेनेति तृतीया पञ्चम्यर्थे प्रच्छन्नकालादन्यत्रेत्यर्थः। प्रच्छन्नकाले सवेलमपि पारणे मा भङ्गः। अत्रापि भुञ्जानस्य पौरुष्यपूर्णताज्ञाने मुखस्थं श्लेष्ममात्रं करस्थं पात्रे मुक्त्वा मिथ्यादुष्कृतं दत्त्वा काले पूर्णे मनसा पारयित्वा भुङ्क्ते। दिग्मोहात् पूर्वां प्रति पश्चिमाबुद्ध्या

शीतकाले वा दिग्मोहः स्यात् । साधुवचनेन यथा साहुणो भणन्ति उग्घाडपोरिसी ततः पारयित्वा भुञ्जानः केनाप्युक्तः सकाल इति ततः स्थातव्यं । सर्वसमाधिप्रत्ययाकारात्समाधिप्रत्ययादेवापवादादन्यत्राहारान् व्युत्सृजामि स्वस्यान्यस्य चार्त्त-रौद्रध्यानपरिहारेण समाधिकरणहेतोराहारमपि गृह्णामि अन्यथा तु प्रत्याख्यामीत्यर्थः । समाही नाम तेण पोरुसी पच्चक्खाया आसुकारियं दुक्खं जायं, गाढपीडा तस्स अन्नस्स वा तेण किं कायवं ? ताहे तस्स पसमणनिमित्तं पाराविज्जइ उस्स(ओस)हं वा दिज्जइ वैद्यादिर्वाऽऽगाढग्लानसारकः पौरुष्यां कृतायां पौरुष्यामपूर्णायामपि भुङ्क्ते न भङ्गः । अर्द्धभुक्तो वा ग्लाना(न)समाधिमृती श्रुत्वा शेषान्नं त्यजति । सप्तैव पुरिमार्द्धे आद्ययामद्वयप्रत्याख्याने 'सूरे उग्गए पुरिमड्ढं पच्चक्खाइ चउव्विहं पि आहारं असणं पाणं खाइमं साइमं अन्न० सह० पच्छ० दिसा० साहु० मह० सव्व० '। अर्थः प्राग्वत् । साधुवचनेनेति केनापि भव्यपुंसा उक्तं यथा पुरिमार्द्धो जात इति । महत्तराकारो लाभविशेषाकारः महत्तरं प्रत्याख्यानपालननिर्जराधिक-लाभहेतुं अन्यनरासाध्यं ग्लानचैत्यसंघादिकार्यं तदेवाकारः प्रत्याख्यानापवादस्तस्मादन्यत्र । सार्द्धपौरुषीप्रत्याख्यानं पौरुषी-वदिति प्रकरणानि । एकाशने अष्टैवाकाराः एकाशनं स्थिरोपविष्टपुताचालनेन भोजनम्, सूत्रम्—

एकासणं पच्चक्खाइ चउव्विहं पि आहारं असणं पाणं खाइमं साइमं अण्णत्थऽणाभोगेणं सहसागारेणं सागारियागारेणं आउंटणपसारणेणं गुरुअब्भुट्ठाणेणं पारिट्ठावणियागारेणं महत्तरागारेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि ॥ (सूत्रम्)

एकाशनं एकस्थनाहारं प्रत्याख्यामि स्वीकरोमि 'चउ० अन्न० सह० सागारियागारेणं' सह आगारेण वर्त्तन्ते इति

आगतैः आकारात् अपवादकारणात् अन्यत्र प्रत्या-
सागारिकाः, इहाधिकारात्साधूनां गृहिणः श्राद्धानां वान्दिकाद्याः तैः आगतैः आकारात् अपवादकारणात् अन्यत्र प्रत्या-
ख्यानं । सागारियं अद्धसमुद्दिसियस्स आगयं जइ वोलेइ पडिच्छइ प्रतीक्ष्यते, अह थिरं ताहे सज्झायवाघाउ त्ति उट्ठेउं अन्नत्थ
गन्तूण समुद्दिस्सइ । आउं० आकुञ्चनं पादादेराकर्षणं, प्रसारणं पादादिप्रलम्बकरणं ताभ्यामन्यत्र । हत्थं वा पायं वा सीसं वा
पसारिज्ज न सक्कइ । गुरुअब्भु० आयरिया पाहुणगो वा आगओ अब्भुट्ठेयव्वं तस्स । एवं समुद्दिट्ठस्स उद्धियस्स पारिट्ठावणिया
जइ होज्ज कप्पइ । पारिट्ठा० परिष्ठापना त्यजना तया संसृष्टः पारिष्ठापनिकोऽधिकारादाहारस्तस्याकारादपवादादन्यत्रेत्यादि
वोसिरामि व्युत्सृजामि आहारं । सप्तैकस्थानस्य तु । एकस्थानं नाम प्रत्याख्यानं यथा 'एगट्ठाणं पच्च०' एगट्ठाणए जहा
अंगोवंगं ठवियं तेण तहाठिएण चेव समुद्दिसियव्वं । अत्र आउंटणपसारणं नत्थि शेषमेकाशनवत् । अष्टैवाचामाम्लस्या-
काराः । इदं चाग्रे 'गोण्णं नामं तिविहं' इत्यादिना ग्रन्थेन व्याख्यास्यते । सूर्योद्गमादनु भक्तार्थस्य, भक्तेनार्थो भक्तार्थः
न भक्तार्थं अभक्तार्थं उपवासं इत्यर्थः, प्रत्याख्यामि सूर्योद्गमादित्युक्तो भोजनादनु प्रत्याख्याननिषेधः, तस्य पञ्चाकाराः—
'सूरे उग्गए अभत्तट्ठं० अन्न० सह० पारि० मह० सव्व० । जइ तिविहस्स पच्चक्खाइ तो विगिंचणया कप्पइ । जइ चउव्वि-
हस्स पच्चक्खाइ पाणगं च अहियं नत्थि ततोऽकल्प्यं जइ पाणगं वि उव्वरियं ताहे से कप्पइ । सर्वप्रत्याख्यानानि चतुर्विधा-
हारत्यागेन क्रियन्ते । जइ तिविहस्स पच्चक्खाइ ताहे सपाणगस्स छ आगारा कीरन्ति । पानस्य षट् आकाराः 'लेवाडेण
वा' लेपयुक्तेन द्राक्षाजलादिना तक्रादिपतनेन सलेपेन जलेन च । 'अलेवाडेण वा' लेपचोपडितभाजनादिजलस्यागालयित्वा
लेपयुक्तं कृतं तेन । अच्छेन निर्मलकाञ्जिकादिना, बहलेनायामगुडि(गड्ड)लघावनजलेन । ससिक्थेन सिक्थपतनेन तन्दुलादि-

सद्भावेन च । असिक्थेन वा सिक्थापनयनेन, वाशब्दाः समुच्चयार्थाः । अत्र प्रकरणगाथा 'लेवाडदक्खपाणाइ इयरसोवीरमच्छमुसिणजलं। बहलं धावणमायाम ससित्थं इयरसित्थविणा' ॥ १ ॥ इत्याकारार्थः । एवंविधेन पानकेन विनाऽन्यं त्रिविधमाहारं व्युत्सृजामि रात्रौ पानकाहारप्रत्याख्यानं न स्यात् सर्वजिनैर्निशाभोज्यस्य निषिद्धत्वात्, रात्रिभोजने च मूलव्रतविराधनाभावात् । श्राद्धानामपि यद्रात्रौ जलपानं तदप्युत्सर्गतोऽकल्प्यं, तेन निर्विकृत्यादिषु तपोविशेषेषु निशासु जलं न पिबन्ति । पानकाकारेषु त्वशनादिलेपोऽस्ति अशनखादिमे च श्राद्धे रात्रिभोज्यनिषेधे निषिद्धे । तदा तु पानकाकारा नोक्ताः किन्तु दशाकारा राजाभियोगाद्या उक्ताः । तेन श्राद्धा रात्रौ सान्नलेपं नीरं न पिबन्ति । अपवादे तु दिनगलितालेपोत्कालिताम्बु उत्कटरक्षाक्षेपणपरिणतगलिताम्बु च पिबन्ति । मुख्यतः सचित्तत्यागो निशाभोज्यत्यागादन्वेव युक्तः प्रतिमासु तथादर्शनात् । ततः केऽप्यशक्त्याऽम्बु पिबन्ति परं पानकाकारा नोक्ता एव । चरमे चत्वार इति, चरमं द्विधा दिवसचरमं भवचरमं च । द्वयोरपि चत्वारः—अन्न० सह० मह० सव्व० । भवचरमं यावज्जीवं स्यात् । दिवसचरमं द्विविधादि स्यात् । भवचरमं त्रिविधाद्येवेति वृद्धाः । ततो नमस्कारस्मरणादिचतुर्विधप्रत्याख्यानं क्रियते तत्पारयित्वाऽनशनी पानं पिबति । पञ्च चत्वारश्चाभिग्रहे । तथा निर्विकृतौ अष्ट नव वाकाराः । तत्राभिग्रहेषु अप्रावरणेऽप्रावरणाभिग्रहे पञ्चाकाराः । यथा कोऽपि अवाउडत्तं पच्चक्खाइ । तत्र अन्न० सह० चोलपट्टागारेणं मह० सव्व० । शेषेष्वभिग्रहेषु दण्डकप्रमार्जनादिषु ग्रन्थिसहितादिषु च चोलपट्टाकारं विना चत्वार आकाराः । अप्रावृत्तत्वे नियमिते सागारिकागमे चोलपट्टं गृह्णातीत्यर्थः । निर्विकृतौ अलेपसंज्ञे द्रवविकृतौ वाष्टाकाराः । अन्यस्मिन्निर्विकृतौ विकृतिप्रत्याख्याने च नव । तत्र दश विकृतयः ।

खीरं दधि नवणीयं घयं तिल्लं गुलो मधु मज्जं मंसं ओगाहिमं च १०। तत्र विगईओ पच्चक्खामीति प्रमाणकृतशेषा
विकृतीः प्रत्याख्यामि त्यजामि। 'निविगइयं पच्चक्खाइ' निर्विकृतिकं विकृतीनां निषेधं प्रत्याख्यामि स्वीकुर्वे।
'आं(आयं)बिलं पच्चक्खाइ' आयामं अवश्रामणं, अम्लं तुर्यो रसस्ताभ्यां निष्पन्नं आयामाम्लं प्रत्याख्यामि स्वीकुर्वे। अन्न० सह०
लेवालेवेणं, लेपो भाजने निषिद्धविकृतेर्लगनं यद्वा निर्विकृतौ विकृतिलेपः तस्मिन् दूरे कृतेऽन्यभक्तं अलेपमिव स्यात् ततो
लेपालेप उच्यते। तस्माल्लेपालेपादन्यत्र निर्विकृतिकं प्रत्याख्यामि। आयामाम्ले चेत्पात्रे लेपवदात्तं समुद्दिष्टं संलिखितं च तेन
गाऽऽनयति निर्लेपं ततो न दोषः। 'उक्खित्तविवेगे' आयामाम्लार्हे विकृत्यादि पतितमुत्क्षिप्य विविच्यते विभिन्नं क्रियते मा
गलतीति। अन्यदप्यानाम्लानर्हे उद्धर्तुं शक्यं तदा कल्पते नान्यथा। 'गिहत्थसंसट्ठेणं' गृहिणा स्वार्थे निषिद्धविकृतिः
लोहादिना संसृष्टा कुसणिताऽस्ति। एष आकारो निस्पृहयतेरेव स्यान्न तु श्राद्धस्येति वृद्धाः। इह चेद्गृही कुसणादिना तल्लेपयुग्
ओदनाद्यादिना दत्ते तदा कल्प्यं यदि रसो दृश्यते ततोऽकल्प्यं। एष गृहस्थसंसृष्टाकार आचामाम्लादन्यत्रे निर्युक्तिकृता
व्याख्यायते। 'उक्खित्तविवेगेणं' उत्क्षिप्ते विकृतिद्रव्ये पोलिकादिगते पृथक्कृते सति विवेको विकृतिपार्थक्यं तस्मादन्यत्र,
यथा पोलिकायां शीतं(तं) गाढस्त्यानघृतं पिण्डगुडो वा कठिनं गलितं दधि वाऽभूत्तद् दूरीकृतं ततो लेपो न ज्ञायते।
एष उक्खित्तविवेकः। 'पडुच्चमक्खिएणं' प्रतीत्य ज्ञात्वा सर्वरूक्षमण्डकादिकमपेक्ष्य सौकुमार्योत्पादनायेषत् स्नेहेन म्रक्षितं
न तु गाढं स्नेहस्याढभावाद्यन्म्रक्षिताभाममित्यर्थः, पोलिकादि धारां विना गृहिणा स्वार्थे अङ्गुल्याऽऽज्येन तैलेन
वा म्रक्षितं प्रतीत्यम्रक्षितं तस्मादन्यत्र। पारिट्ठावणियागारात् परिष्ठापनार्हविकृत्याकारादन्यत्र। तत्र बहुन्नाप्तौ चेत् स्तोकं

वृद्धं तदा नमस्कारपौरुषीवतां देयं पारणकवतां वाऽसहानां वा देयं, यथा पारिष्ठापनिकाहारः कल्प्यः तदग्रे वक्ष्यते । विकृतिके निर्विकृतिके च अद्रवविकृतिषु नव द्रवविकृतिष्वष्टाकारा ज्ञेयाः । शेषं प्राग्वत् । अष्टनवाकारयुक्तिं वक्ति—

नवणीओगाहिमए अद्दवदहि(व) पिसियघयगुले चेव ।
नव आगारा तेसिं सेसदवाणं च अट्ठेव ॥ १५९६ ॥

नवनीते अवगाहिमके अद्रवदध्नि गालिते इत्यर्थः, पिशिते मांसे घृतगुडे चैव, अद्रवत्वं सर्वत्र ज्ञेयं । अमूषां विकृतीनां नवाकारा स्युः । शेषद्रवाणां शेषाणां द्रवाणां विकृतीनां विलीनघृततैलद्रवगुडादीनामष्टावाकाराः उत्क्षिप्तविवेको न स्यादित्यर्थः ॥ १५९६ ॥ अथाचामाम्लं–

गोण्णं नाम तिविहं ओअण कुम्मास सत्तुआ चेव ।
इक्किक्कं पि य तिविहं जहन्नयं मज्झिमुक्कोसं ॥ १५९७ ॥

आयामाम्लमिति गौणं नाम । आयामोऽवश्रामणं आम्लं चतुर्थरसः ताभ्यां निर्वृत्तं आयामाम्लं । इदं चोपाधिभेदा-त्रिधा–ओदनः धवलधान्यमित्यर्थः, कुल्माषाः काष्टद्विदलमित्यर्थः, सक्तवो लोट्ट इत्यर्थः, ओदनादीनधिकृत्य स्यादिति । आचामाम्ले पक्वधान्यं निर्नखिकमप्यकल्प्यं मरीचजीरकादियुक् करीरादिफलानि च धान्यस्थानीयानि, पृथग् लवणं चाकल्प्यं उत्सर्गेऽनुक्तत्वात् । एकैकं ओदनादि त्रिविधं स्यात् । जघन्यं मध्यमं उत्कृष्टं स्यात् ॥ १५९७ ॥ कथमित्याह–

दव्वे रसे गुणे वा जहन्नयं मज्झिमं च उक्कोसं ।
तस्सेव य पाउग्गं छलणा पंचेव य कुडंगा ॥ १५९८ ॥

द्रव्ये गुणे रसे च । द्रव्यं गुणं रसं चाश्रित्येत्यर्थः । किं जघन्यं मध्यमं उत्कृष्टं च ? तथा तस्यैवाचाम्लस्य प्रायोग्यं । तथा छलना तथा पञ्चैव कुडंगा वक्रवादित्वभावा वक्तव्याः । तत्र आचामाम्लयोग्यं द्रव्यमुत्कृष्टं शालिगोधूमकुल्माषादि यद्यस्मै रोचते, रस उत्कृष्टः शाल्यादिरवश्रावणादिना, गुणो निर्जरारूपः स तदा जघन्यः स्यात् । जघन्यं द्रव्यं रालक-कोद्रवादिः, रसो जघन्यो यद्यस्मै नेष्टं उष्णाम्भो वा, तेन गुण उत्कृष्टो निर्जरारूपः । मध्यमद्रव्यरसयोर्गुणो निर्जरा मध्या स्यात् । अत्रायं वृद्धाम्नायः-आचाम्लं नाम सप्तधा शालिकूरादिद्रव्यं तद्भेदाश्च । तेनाचाम्लं क्रियते उपचारात्त-द्प्याचाम्लमुक्तं, इदं चोत्कृष्टत्वात्प्रायो न गृह्यत एव । आचामाम्लप्रायोग्यं तन्दुलकणिकापिष्टपोलिकामण्डकादि, अस्य च निरपवादप्रासुकत्वात् प्रायोग्यत्वमुक्तम् । एवं कुलमाषाद्या आचामाम्लप्रायोग्यं तुषमिश्रितकणिकादिसक्तवो जवादीना[माचा]-माम्लप्रायोग्यं धान्यमण्डकादि । आचामाम्लेऽपक्वतन्दुलादि प्रासुकमप्यकल्प्यं ओदनादीनामेवोक्तत्वात् । फलिकाः पलि-मन्थनान्मर्दितशालाः किं पुनराचामाम्ले ?। तत्र कलमशालिकूरो द्रव्यत उत्कृष्टं द्रव्यं तत्सत्केनायामेन रसत उत्कृष्टं गुणतो जघन्यम् । स एव कूरोऽन्येषामायामैर्द्रव्यत उत्कृष्टो रसतो मध्यो गुणतोऽपि मध्यः, यदोष्णाम्बुना तदा रसतो जघन्यं गुणतो मध्यमम् । ओन(नण्ड)लोदना द्रव्यतो मध्यमा काञ्जिकेन रसोत्कृष्टा आयामेन रसमध्या उष्णोदकेन रसजघन्या एते त्रयो

गुणेन मध्या मध्यमद्रव्यत्वात् । रालगादितृणकूरा द्रव्यतो जघन्याः, ते काञ्जिकायामाभ्यां रसोत्कृष्टमध्या गुणमध्या उष्णोदकेन तदा जघन्यं द्रव्यं रसो जघन्यः गुण उत्कृष्ट इत्यादि । अहवा उक्कोसोक्कोसं, उक्कोसमज्झिमं, उक्कोसजहन्नं । कंजियआयामउण्होदएहिं जहन्ना मज्झिमा उक्कोसा निज्जरा । एवं त्रिष्वपि ज्ञेयं । तथा छलना इयं, यथा कोऽप्याचाम्लं प्रत्याख्याय विकृतीर्भोक्तुं उपविष्टः । गुरुरूचे कथमेवं ? स ऊचे यथा हिंसां प्रत्याख्याय सा न क्रियते एवमाचाम्लं प्रत्याख्याय तत्कथं क्रियते ? इति छलना । गुरुराह भो ! प्रत्याख्याननियमव्रतादिशब्दाः प्रवृत्तिनिवृत्त्यर्थास्ततोऽत्र प्रवृत्त्यर्थः प्रत्याख्यानशब्दो ज्ञेयः ॥ १५९८ ॥ अथ कुडङ्गाः—

लोए वेए समये अन्नाणे खलु तहेव गेलन्ने ।
एए पंच कुडंगा नायव्वा अंबिलंमि भवे ॥ १५९९ ॥

केनाप्याचामाम्लं कृत्वा संखडिं दृष्ट्वा संखड्यां पक्वान्नाद्यटित्वाचार्येभ्योऽदर्शि । गुरुरूचे त्वयाचामाम्लं प्रत्याख्यातमस्ति । स ऊचे मया क्वापि लोके लोकशास्त्रेषु तथा वेदे तथा समये चरकादिसिद्धान्ते मयाचामाम्लं नादर्शि ततः किं आचामाम्लं ? एवं त्रयः कुडङ्गाः मायाभेदाः । तथाऽज्ञानेऽहं न जाने कथमाचामाम्लं क्रियते, मया ज्ञातं घृतेन भक्तमार्द्रीकृत्य भुज्यते इति ४ चतुर्थः कुडङ्गः । तथा ग्लानोऽहं शूलं समेति न क्षम आचामाम्लं कर्तुं पञ्चमः कुडङ्गः ५ ॥ १५९९ ॥ निर्विकृतिकाधिकारशेषमाह—

पंचेव य खीराइं चत्तारि दहीणि सप्पि नवणीता ।
चत्तारि य तिल्लाइं दो वियडे फाणिए दुन्नि ॥ १६०० ॥

पञ्च क्षीराण्यजोष्ट्रीगोमहिष्येडिकानाम्, तथा चत्वारि दधीनि उष्ट्रीणां दध्नोऽभावात्, तथा चत्वारि सर्पींषि घृतानि, चत्वारि नवनीतानि । चत्वारि तैलानि तिलातसीलट्टासर्षपाणां विकृतयः, शेषाण्यविकृतयः लेवाडाणि तु स्युः । विकटे मद्ये द्वे काष्ठजं पिष्टजं च । फाणितौ गुडौ द्वौ द्रवगुडः पिण्डगुडश्च ॥ १६०० ॥

महुपुग्गलाइं तिन्नि चलचलओगाहिमं तु जं पक्कं ।
एएसिं संसट्ठं वुच्छामि अहाणुपुव्वीए ॥ १६०१ ॥

मधूनि त्रीणि कौन्तिकं भ्रामरं माक्षिकं च । त्रीणि पुद्गलानि मांसानि जलचराणां स्थलगानां खगानां च । यच्चलचलेति-शब्देन पक्कं सफेनं अवगाहेन स्नेहनोलेन निर्वृत्तं अवगाहिमं, दशमा विकृतिः । तत्राद्यद्वितीयतृतीयवारावगाहिमं विकृतिः । शेषाणि अ जोगवाहीणं कप्पन्ति । जइ नजइ यथा एगेण चेव पूयएण तवगो भरिओ बीयं चेव कप्पइ निव्विगइय-पच्चक्खाणइत्तगस्स लेवाडं तु होइ । एतेनेति स्पष्टं ज्ञायते पूपकाद्यप्यवगाहिमविकृतिरेव । एतेषां विकृतिभेदानां संसृष्टं गृहस्थसंसृष्टाकारं आनुपूर्व्या वक्ष्यामि ॥ १६०१ ॥

खीरदही वियडाणं चत्तारि उ अंगुलाइं संसट्ठं ।
फाणियतिल्लघयाणं अंगुलमेगं तु संसट्ठं ॥ १६०२ ॥

क्षीरेण मिश्रितः कूरो लभ्यते तत्र तस्य कुण्डकस्य ओदनाच्चत्वार्यङ्गुलानि दुग्धं स्यात्तदा निर्विकृतिकस्य कल्पते, पञ्चममारब्धं तदा विकृतिः। एवं दधिविकटयोरपि। फाणिततैलघृतानां मिश्रिते यद्यङ्गुलमुपरि ततः कल्पते परतो न॥१६०२॥

मधुपुग्गलरसयाणं अद्धंगुलयं तु होइ संसट्ठं ।
गुलपुग्गलनवणीए अद्दामलयं तु संसट्ठं ॥ १६०३ ॥

मधुनः पुद्गलरसकल्पश्लथमांसस्यार्द्धाङ्गुलेन संसृष्टं स्यात् । पिण्डगुडस्य पुद्गलस्य नवनीतस्य चार्द्रामलकमात्रं संसृष्टं । आर्द्रामलकशब्देन निम्बमुकुरः, यदि बहून्येतन्मानानि तदा कल्पते एकमपि वृद्धं न कल्पते ॥ १६०३॥ पारिष्ठापनिकाकारे कीदृशस्य पारिष्ठापनिकं देयं ? गुरुराह–

आयंबिलमणायंबिल चउथा बालवुड्ढसहुअसहू ।
अणहिंडियहिंडियए पाहुणयनिमंतणावलिया ॥ १६०४ ॥

पारिष्ठापनिकयोग्याः साधवो द्विधा आचामाम्लवन्तोऽनाचामाम्लवन्तश्च । अनाचामाम्लवन्त एकाशनाद्यष्टमतपो यावत् ।

दशमादितपसां पारिष्ठापनिकं न कल्पते तेषामुष्णपेयाद्यर्हत्वात् सूर्यधिष्ठानाच्च । केऽप्याचार्या अष्टमादितपो विकृष्टं केऽपि दशमादि विकृष्टं वदन्ति । तत्र ये अष्टमं वि(अवि)कृष्टमाहुः तेषामष्टमं यावत् पारिष्ठापनिकं कल्प्यं । तत्राचामाम्लकचतुर्थभक्तयोर्मध्ये चतुर्थकृते देयं, सोऽपि द्विधा बालो वृद्धश्च बालाय देयं, सोऽपि द्विधा सहोऽसहश्च असहाय देयं तत्रापि हिण्डिताय देयं न त्वहिण्डिताय । तत्रापि प्राघुर्णकाय देयं मुख्यतो न तु वास्तव्याय । एवं चतुर्थभक्तो बालोऽसहो हिण्डितः प्राघुर्णकः पारिष्ठापनिकं भोज्यते १ । तदभावे बालोऽसहो हिण्डितो वास्तव्यः २ । तदभावे बालोऽसहोऽहिण्डकः प्राघुर्णकः ३ । तदभावे बालोऽसहोऽहिण्डको वास्तव्यः ४ । एवमेतेन करणोपायेन चतुर्भिः पदैः षोडशभङ्गाः स्युः । स्थापना—

[illegible]	ऽ	—	ऽ	—	ऽ	—	ऽ	—	ऽ	—	ऽ	—	ऽ	—	ऽ	—
[illegible]	ऽ	ऽ	—	—	ऽ	ऽ	—	—	ऽ	ऽ	—	—	ऽ	ऽ	—	—
[illegible]	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	—	—	—	—	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	—	—	—	—
[illegible]	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	—	—	—	—	—	—	—	—

एवं क्रियमाणे यावदन्त्यभङ्गे देयं । ततोऽपि वहौ परिष्ठाप्ये सर्वेभ्यो देयं । यथाचाम्लिकचातुर्थिकयोर्मध्ये चातुर्थिकाय देयमुक्तं तथाचाम्लिकषष्ठतपसोरपि १६ भङ्गाः । ततोऽष्टमक (तथाचाम्लिकाष्टमतपसोरपि) १६ भङ्गाः । आचाम्लनिर्विकृत्योरपि १६, तत्रा(चाचा)म्लाते देयं, तथाचाम्लकस्थानयोर्भङ्गाः १६ आचाम्लवते देयं । आचामाम्लैकाशनयोः १६ आचाम्लवते देयं । एवं आचाम्लेन चतुर्थषष्ठाष्टमनिर्विकृत्येकस्थानैकाशनसत्कैः षोडशभिर्भङ्गैः सर्वे षण्णवति भङ्गाः । चतुर्थषष्ठतपसोः षोडश षष्ठतपसे देयं, चतुर्थाष्टमभक्तयोः १६ अष्टमतपसो देयं । एकस्थाननिर्विकृत्योः १६ एकस्थाना(निका)य देयं । एकस्थान(काशन) निर्विकृत्योः १६ एकस्थानाय (एकाशनिकाय) देयम् ॥ १६०४ ॥ परिष्ठापना कथं स्यात्तत्र विधिमाह—

विहिगहियं विहिभुत्तं तह गुरूहिं जं भवे अणुन्नायं ।
ताहे वंदणपुव्वं भुंजइ से संदिसावेउं ॥ १६०५ ॥

विधिनाऽलुब्धेन निर्दोषं गृहीतं ततो विधिना वृद्धानां प्रदर्श्यानुज्ञाप्य क्षुल्लादिनिमन्त्रणया कटप्रतरच्छेदसिंहखादनादिना ओघनिर्युक्त्युक्तेन मण्डल्यां भुक्तम् । ईदृशं उद्धरितं अधिकं जातं गुर्वनुज्ञातं पारिष्ठाप्यं ज्ञात्वा यदा गुरुर्वक्ति आर्येदं पारिष्ठापनिकमिच्छाकारेण भुङ्क्ष्व, तदा तस्य वन्दनं दत्त्वा संदिश्य भोक्तुं कल्प्यम् ॥ १६०५ ॥

चउरो य हुंति भंगा पढमे भंगंमि होइ आवलिया ।
इत्तो अ तइयभंगो आवलिया होइ नायव्वा ॥ १६०६ ॥

चत्वारो भङ्गाः स्युः । विधिगृहीतं विधिभुक्तं १ विधिगृ० अविधिभुक्तं २ अविधिगृ० विधिभुक्तं ३ अविधिगृ० अविधिभुक्तं ४ । प्रथमे भङ्गे पूर्वोक्तावलिकानां भोक्तुं कल्प्यं । द्वितीये परिष्ठाप्यते । अविधिभुक्तं नाम काकशृगालादिरीत्या भुक्तं, तत्र यद्वर्धते तदुज्झ्यते । दाने छर्द्यादिदोषः । ईदृग् यो दत्ते यश्च भुङ्क्ते द्वयोरपि विवेकः क्रियतेऽपुनःकारेण वोपस्थितयोः पञ्चकल्याणं दीयते । तृतीयभङ्गेऽविधिगृ० स्वभोजनार्थं स्निग्धादिबहुलाभं लात्वा विधिना भुक्तं रात्निकेन सह मण्डल्यां, तदुद्धरितं आवलिकानां कल्प्यं । अविधिगृहीतं अविधिभुक्तं अकल्प्यम् । तथा यद्वाऽसंस्तरणेऽशुद्धं गृहीतं ततो मण्डल्यां वृद्धादेशाद्विधिना भुक्तं । तत्रावलिकया न कल्पते ॥ १६०६ ॥ व्याख्यातं आद्यगाथोक्तं प्रत्याख्यानद्वारं । प्रत्याख्यातारमाह—

पच्चक्खाएण कया पच्चक्खाविंतए वि सूआए(उ) ।
उभयमवि जाणगेअर चउभंगे गोणिदिट्ठंतो ॥ १६०७ ॥ उभयमवि जाणगेअर चउभंगे गोणिदिट्ठंतो ॥ १६०७ ॥

उभयमवि जाणगेअर चउभंगे गोणिदिट्ठंतो ॥ १६०७ ॥ न हि प्रत्याख्यानं प्रत्याख्याता गुरुस्तेन द्वारगाथोक्तेन प्रत्याख्या(ख्यापयि)तर्यपि शिष्ये सूचा कृता ज्ञेया तौ च वाच्यौ । न हि प्रत्याख्यानं प्रायो गुरुशिष्यौ विना स्यात् । उभयोरप्यत्र ज्ञातरि अज्ञातरि च चतुर्भङ्गः तत्र चतुर्भङ्गे गोदृष्टान्तः ॥१६०७॥ भावार्थं स्वयमाह—

मूलगुणउत्तरगुणे सव्वे देसे य तह य सुद्धीए । पच्चक्खाणविहिन्नू पच्चक्खाया गुरू होइ ॥१६०८॥

मूलगुणेषूत्तरगुणेषु च सर्वतो देशतश्च तथा च शुद्धौ षड्विधायां श्रद्धानादिरूपायां प्रत्याख्यानविधिज्ञः प्रत्याख्याता गुरुः स्यात् ॥ १६०८ ॥

किइकम्माइविहिन्नू उवओगपरो अ असढभावो अ ।
संविग्गथिरपइन्नो पच्चक्खाविंतओ भणिओ ॥ १६०९ ॥

कृतिकर्मादिविधिज्ञो वन्दनादिविधिज्ञः प्रत्याख्यानाकारप्रकारज्ञः उपयोगपरः संविग्नो मोक्षार्थी स्थिरप्रतिज्ञः प्रत्याख्यापयिता शिष्यो भणितो जिनाद्यैः ॥ १६०९ ॥

इत्थं पुण चउभंगो जाणगइयरंमि गोणिनाएणं ।
सुद्धासुद्धा पढमंतिमा उ सेसेसु अ विभासा ॥ १६१० ॥

अत्र प्रत्याख्यातृप्रत्याख्यापयितृभ्यां चतुर्भङ्गी । जानतीतरस्मिंश्च गोदृष्टान्तेन । प्रत्याख्याता गुरुः प्रत्याख्यापयिता शिष्यः । शुद्धाशुद्धौ प्रथमान्त्यौ शेषयोर्भङ्गयोर्विभाषा विभागः कार्यः । यथा नमस्कारपौरुष्यादिकं विधिं जानन् जानतः प्रत्याख्यानं कारयति आद्यो भङ्गः शुद्धः, अजानन्नजानतः कारयति तुर्यो भङ्गोऽशुद्धः । अत्र ज्ञातेन दृष्टान्तेन गावो ज्ञेयाः । यदि गवां प्रमाणं स्वामी वेत्ति गोपोऽपि वेत्ति तदा स्वामी सुखं वृत्तिं दत्ते गोपालश्च लाति । एवं शुद्धाशुद्धौ प्रथमान्त्यभङ्गौ स्याताम् । शेषयोर्भङ्गयोर्विभाषा । स्थापना यथा गुरोर्जानतः शिष्यस्याजानतो द्वितीयभङ्गः । इह तत्कालं शिष्यं संक्षेपतः प्रबोध्य प्रत्याख्यानविधिं ज्ञापयित्वा गुरोः प्रत्याख्यानं ददतोऽयमपि शुद्धः, अन्यथा त्वशुद्धः । गुरोरजानतः प्रत्याख्याने तृतीयः । यथा सामान्यमाध्वादिपार्श्वे प्रत्याख्यानाकारादिज्ञः श्राद्धः प्रत्याख्याति, अयं कारणे शुद्धः, अकारणेऽशुद्धः । यथा प्रभुर्गवां प्रमाणवेत्ता व्यग्रः सन् सन्दिशत्यज्ञस्यान्यस्य ततः स सन्दिष्टोऽज्ञस्य गोपालस्य तदुक्तमात्रेण वृत्तिं दत्ते, असन्दिष्टो न दत्ते । एवमज्ञो गुरुसन्दिष्टः प्रत्याख्यापयिता शुद्ध एव । एवं प्रभुसन्दिष्टादिषु विभाषा ॥ १६१० ॥

उक्तं प्रत्याख्याताद्वारम्, प्रत्याख्यातव्यमुक्तमप्यध्ययने द्वाराशून्यार्थमाह—

दव्वे भावे य दुहा पच्चक्खाइव्वयं हवइ दुविहं ।
दव्वंमि अ असणाई अन्नाणाई य भावंमि ॥ १६११ ॥

द्रव्ये भावे प्रत्याख्यातव्यं स्यादिति द्विविधं ज्ञेयं । द्रव्ये प्रत्याख्यातव्यमशनादि । अज्ञानादि तु भावे द्वा० ३ । अथ

प्रत्याख्यातृप्रत्याख्यापयित्रोः चतुर्भङ्गी ।

पर्षद्द्वारं, पर्षदिति प्रत्याख्यानार्हमनुष्यश्रेणिः सा द्विधा उपस्थिताऽनुपस्थिता च। उपस्थिता श्रोतुं आगता, अनुपस्थिता श्रोतुमनागता। उपस्थितापि द्विधा सम्यगुपस्थिता च मिथ्योपस्थिता च। मिथ्योपस्थिता कपटागता गोविन्दाचार्यवत्। सम्यगुपस्थिता द्विधा भाविताऽभाविता च। भाविता द्विधा विनीताऽविनीता च। विनीता द्विधा व्याक्षिप्ताऽव्याक्षिप्ता च। व्याक्षिप्ता या सीवनादिकर्मपरा, अव्याक्षिप्ता द्विधा उपयुक्ता अनुपयुक्ता च। तत्रोपस्थित १ सम्यगुपस्थित २ भावित ३ विनीत ४ अव्याक्षिप्तो ५ पयुक्तायाः ६ पर्षदः प्रत्याख्यानं वाच्यं, उपलक्षणादन्यदावश्यकादि सर्वं श्रुतं च वाच्यं। एतद्विपरीतायाः अनुपस्थितादिविशेषणाया न देयं। एवं षट्पदैः अन्त्यपदादिपरावर्त्तेन प्राक्तनषोडशभङ्गवत् अत्र चतुःषष्टिभङ्गा ज्ञेयाः, पश्चानुपूर्व्या द्विगुणगुरुलघुकरणे यदा सर्वलघुः समेतः तावता भङ्गकाः पूर्णाः स्युः। अत्राद्यो भङ्गः शुद्धः शेषा न ॥१६११॥ तत आह–

सोउं उवट्ठियाए विणीयवक्खित्ततदुवउत्ताए।

एवंविहपरिसाए पच्चक्खाणं कहेयव्वं ॥ १६१२ ॥- (द्वारम्)

श्रोतुं सम्यगुपस्थितायाः विनीतायाः अव्याक्षिप्तायास्तदुपयुक्तायाः पर्षदः 'एवंविधे'त्यादि द्वा० ४। अथ कथनविधिः– पूर्वं मूलगुणाः साधुधर्म्मः स उच्यते तदशक्तस्य श्राद्धधर्म्मः। उत्तरगुणेषु पूर्वं षण्मासतप उच्यते ततो यावद्येन शक्त्या कर्तुं शक्यते तद्देयं ॥ १६१२ ॥ अथनाऽयं कथनविधिः—

आणागिज्झो अत्थो आणाए चेव सो कहेयव्वो।

दिट्ठंति उ दिट्ठंता कहणाविहि विराहणा इअरा ॥ १६१३ ॥ (द्वारम्)

आज्ञा आगमस्तद्ग्राह्यस्तद्विनिश्चेयोऽर्थो विचारोऽनागतातिक्रान्तप्रत्याख्यानादिः सौधर्म्मादिर्वा आगमेनैवासौ कथयितव्यः न दृष्टान्तेन । रत्नज्ञपित्रा समग्रज्ञापितमूल्यः पुत्रो रत्नानि विक्रीणन् परोक्तमल्पमूल्यं न श्रद्धत्ते ततो मृषा न वदेर्दिति । तथा दार्ष्टान्तिको दृष्टान्तवाच्योऽर्थो वह्न्यादिदृष्टान्तात् दृष्टान्तदर्शनात् कथनीयः, यथा आत्मा नित्यानित्यो वस्तुत्वाद् घटवत् इत्यादिदृष्टान्तात् दृष्टान्तेन वाच्यं । यद्वा यथामुकमेवं भवता ज्ञातं तथेदमपि प्रत्येतव्यमिति कथनेऽयं विधिः, अन्यथा विपर्ययोक्तौ कथनविधेर्विराधना स्यात् द्वा० ५ ॥ १६१३ ॥ अथ फलं—

पच्चक्खाणस्स फलं इहपरलोए अ होइ दुविहं तु । इहलोइ धम्मिलाई दामन्नगमाई परलोए ॥१६१४॥

इहलोके फलं स्यात् परलोके चेति द्विविधं । इहलोके दृष्टान्तो धम्मिलादिः । यथा धम्मिल्लेनाचामाम्लानि कृत्वा फलं प्राप्तं । अत्र धम्मिल्लहिण्डी वीक्ष्या, आदिशब्दात् कफविप्रुणमलामर्शादयो लब्धयः स्युः । परलोकफले दृष्टान्तो दामन्नकः । यथा राजपुरे एकः कुलपुत्रको जिनदासमित्रसंगात् साधुपार्श्वे गतो मत्स्यमांसनियमं ललौ । दुर्भिक्षे मत्स्याहारे लोके श्यालकैः बलाद् ह्रदं नीतः । तत्र तेन जालं क्षिप्तं मत्स्यान् दृष्ट्वाऽमुञ्चत् । एवं दिनत्रयं बलात्कृतं । एकदा मत्स्यपक्ष्म त्रुटितं ततो निवृत्तोऽनशनाद्राजगृहे श्रेष्ठिसुतो दामन्नकनामाऽभूत् । अष्टवर्षस्य मार्या कुलं मृतं । तत्रैव सागरपोतस्य गृहे तस्थौ । तत्र साधू भिक्षाया (भिक्षार्थ-माया)तौ । साधूक्तिरेष गृहस्वामीति । गृहेशेन श्रुत्वाऽन्त्यजानामर्पितः, तैरङ्गुलिच्छेदान्निर्विषयीकृतः । नश्यन् श्रेष्ठिगोकुल-

पतिनाऽनाथत्वात् स्थापितः पुत्रस्थाने, यौवने सागरपोतस्तत्रैतस्तं दृष्ट्वोपलक्ष्य लेखं दत्त्वा मारणाय राजगृहे पुत्राय प्रैषि चैत्ये सुप्तः क्रमात् विषापरिणयनं । पुनः श्रेष्ठिना मातृदेवीपूजायै स प्रैषि यावत्स श्रेष्ठी जातः । यावत् 'अणुपुंखमावहं(यं)ता वि अणत्था तस्स बहुगुणा हुन्ति । सुहदुक्खकच्छपुड(ड)ओ, सुखदुःखयोः करणविपत्रे कच्छापुटः कक्षापुटो यस्य स सुखदुःखकक्षापुटः, जस्स कयंतो वहइ पक्खं' । १ । इति गाथा, ततस्तिस्रो लक्षाः ददौ । राज्ञा पृष्टे सम्बन्धं श्रुत्वा प्रमादः कृतः, ततो बोधिलाभो धर्म्माद्देवलोकः आदिशब्दात्सुकुलप्राप्तिमुक्ती ॥ १६१४ ॥

पच्चक्खाणमिणं सेविऊण भावेण जिणवरुद्दिट्ठं । पत्ता अणंतजीवा सासयसुक्खं लहुं मुक्खं ॥१६१५॥

इदं प्रत्याख्यानं जिनवरोपदिष्टं, सेवित्वाऽनन्तजीवा लघु शीघ्रं मोक्षं प्राप्ताः । प्रत्याख्यानफलं 'पच्चक्खाणंमि कए' इत्यादौ शास्त्रद्वारेण (णोक्तं, इह तु) लोकनीत्या उक्तं ॥ १६१५ ॥ उक्तोऽनुगमो व्याख्यारूपः, अथ नयाः—

नायंमि गिण्हियव्वे अगिण्हियव्वंमि चेव अत्थंमि । जइयव्वमेव इइ जो उवएसो सो नओ नाम ॥१६१६॥

गृहीतव्येऽगृहीतव्ये चार्थे ज्ञाते एव सति यतितव्यं, ततो ज्ञानमेव प्रमाणं न क्रिया ज्ञानं विना साध्यसिद्ध्यभावात् इति ज्ञाननयः । अथ क्रियानयः, गृहीतव्येऽगृहीतव्ये चार्थे ज्ञाते यतितव्यमेव ततः क्रियैव प्रमाणं न ज्ञानं यत्नं विना साध्यसिद्ध्यभावात् इति द्वयोर्ज्ञानक्रियानययोर्य उपदेशः, स नयो नाम कथ्यते ॥ १६१६ ॥ अथ प्रमाणमाह—

सव्वेसिं पि नयाणं बहुविहवत्तव्वयं निसामित्ता । तं सव्वनयविसुद्धं जं चरणगुणट्ठिओ साहू ॥१६१७॥

॥ इति पच्चक्खाणनिज्जुत्ती समत्ता । श्रीभद्रबाहुस्वामिविरचिता श्रीमदावश्यकनिर्युक्तिः समाप्ता ॥

सर्वेषामपि नयानां नैगमसंग्रहादीनां ज्ञान(ज्ञानक्रिया)द्वयसंगृहीतानां बहुविधां वक्तव्यतां निशम्य तत्सर्वनयविशुद्धं सर्वनयसंमतं ज्ञेयं यत्साधुश्चरणगुणव्यवस्थितश्चारित्रक्रियाज्ञानस्थितः स्यात्। यतः पूर्वं ज्ञाते गृहीतव्येऽगृहीतव्ये चार्थे यतितव्यमेव पश्चात्क्रियायत्नः कार्य एव ततश्चारित्रं, यतः सर्वनया भावनिक्षेपमिच्छन्ति। भावश्च रत्नत्रयाराधनपरः साधुः। इति प्रत्याख्याननिर्युक्तिः समाप्ता।

ते श्रीअञ्चलगच्छमण्डनमणिश्रीमन्महेन्द्रप्रभ—श्रीसूरीश्वरपट्टपङ्कजसमुल्लासोल्लसद्भानवः।
तर्कव्याकरणादिशास्त्रघटनाब्रह्मायमाणाश्चिरं, श्रीपूज्यप्रभुमेरुतुङ्गगुरवो जीयासुरानन्ददाः ॥ १ ॥

तच्छिष्य एष खलु सूरिरचीकरत् श्री—माणिक्यशेखर इति प्रथिताभिधानः।
चञ्चद्विचारचयचेतनचारुमेनां सद्दीपिकां सुविहितव्रतिनां हिताय ॥ २ ॥

एषा श्रीआवश्यकनिर्युक्तेर्दीपिका चिरं जयतात्। मुनिनिचयवाच्यमाना तमोहरा दीपिका पिण्डनिर्युक्तेरोघनिर्युक्तिदीपिकादशवैकालिकस्याप्युत्तराध्ययनदीपिके ॥ ३ ॥

आचारदीपिकानावतत्त्वविचारणं तथास्य। एककर्तृतया ग्रन्था अमी अस्याः सहोदराः ॥ ४ ॥

इति श्रीविधिपक्षमुख्याभिधानश्रीमदञ्चलगच्छाधिराजसुगुरुसुविहितचक्रवर्त्तिश्रीमन्मेरुतुङ्गसूरीन्द्रक्रमकमलमरालशिष्यश्रीमाणिक्यशेखरसूरिविरचिता श्रीआवश्यकनिर्युक्तिदीपिका समाप्ता।

